



धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय
चेतना की पत्रिका

अंक : ७३

पौष-फाल्गुन, २०६३
जनवरी-मार्च २००७ ई०

सम्पादक - मण्डल

प्रो० काशीनाथ मिश्र
महन्त उद्धवदासजी
डा० श्रीरंजन सूरिदेव
आचार्य किशोर कुणाल

प्रधान सम्पादक

भवनाथ झा

महावीर मन्दिर प्रकाशन
के लिए

प्रो० काशीनाथ मिश्र
द्वारा प्रकाशित

तथा

सर्वलाइट प्रेस में मुद्रित

पत्र-सम्पर्क:

धर्मायण,

पाणिनि-परिसर,

बुद्ध-मार्ग,

पटना-८००००१

दूरभाष - ०६१२-२२०७७२५

E-mail : mahavimandir@sify.com

मूल्य : **दस रुपये**

धर्मायण

विषय - सूची

१. पौराणिक शापकथाएँ:
भारतीय मिथक - डॉ० जनार्दन यादव ४
२. रामचरितमानस में सगुण
तथा निर्गुण के सन्धिस्थल - डॉ० विनोद कुमार सिन्हा १०
३. विवाह संस्कार - डॉ. राजेन्द्र झा १७
४. श्रीरामचरितमानस में
श्रीराम की शरीर-कान्ति - प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह २२
५. डाक टिकटों में भारतीय संस्कृति- आचार्य चन्द्र किशोर ३४
पाराशर
६. तुलसी की अप्रस्तुत-योजना - डी० आर० ब्रह्मचारी ३६
७. सिंहासनबत्तीसी : कथाशिल्प
का निहितार्थ - डॉ० श्यामसुन्दर घोष ४२
८. चक्रेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी - श्रीरंजन सूरिदेव ४८
९. संतन में रैदास संत हैं - डा० एस.एन.पी. सिन्हा ५१
१०. तिथियों का प्राचीन वर्णन - आचार्य राजनाथ झा ५८
११. श्रीकृष्ण-क्रान्ति - गंगा पीताम्बर शर्मा
'श्यामहृदय' ६३
१२. वेणुगीत - अरविन्द मानव ६३
१३. शुक्लयजुर्वेदीय
मुक्तिकोपनिषद् - आचार्य सीताराम चतुर्वेदी ६७
१४. शांति और आनंद - श्रीकान्त व्यास ७६



संपादकीय

संस्कृत भाषा में उत्तम पुरुष के लिए 'अस्मद्' सर्वनाम का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ होता है- 'मैं'। इस सर्वनाम के रूप तीनों वचनों एवं सातो विभक्तियों में होता है। इसका संबोधन का रूप नहीं होता तथा लिंग-भेद भी नहीं होता। इस सर्वनाम के रूप हिन्दी अनुवाद के साथ नीचे दिये जा रहे हैं।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम् (मैं)	आवाम् (हमदोनों)	वयम् (हमलोग)
द्वितीया	माम्, मा (मुझे)	आवाम्, नौ (हमदोनों को)	अस्मान्, नः (हम सबको)
तृतीया	मया (मेरे द्वारा)	आवाभ्याम् (हमदोनों के द्वारा)	अस्माभिः (हम सबके द्वारा)
चतुर्थी	मह्यम्, मे (मेरे लिए)	आवाभ्याम्, नौ (हमदोनों के लिए)	अस्मभ्यम्, नः (हम सबके लिए)
पंचमी	मत् (मुझसे)	आवाभ्याम् (हमदोनों से)	अस्मत् (हम सबसे)
षष्ठी	मम, मे (मेरा)	आवयोः, नौ (हमदोनों का)	अस्माकम्, नः (हम सबका)
सप्तमी	मयि (मुझमें)	आवयोः (हमदोनों में)	अस्मासु (हम सबमें)

इनमें षष्ठी एवं चतुर्थी विभक्ति में विकल्प से तीनों वचनों के लिए क्रमशः ने, नौ और नः का प्रयोग हुआ है।

भारतीय आर्ष साहित्य में यह सर्वनाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ऋषियों और सन्तों ने इस सर्वनाम के बहुवचन के रूपों का अधिक व्यवहार किया है। यह महज संयोग नहीं जानबूझकर पूरे होशो हवास में ऐसा किया गया है। यह भारतीय परम्परा का गौरव है। यह परम्परा की व्यापक समष्टि भाव का निदर्शन है। व्यक्तिगत कल्याण की भावना के स्थान पर विश्वगत भाव का घोटक है। यह भावना यहाँ तक दृढ़ हो गयी है कि अपने लिए एकवचन का प्रयोग तक निन्दनीय माना गया है। एक आर्ष वचन है-

एकवचनं न प्रयुञ्जीत गुरावात्मनि चेश्वरे।

अर्थात् गुरु, ईश्वर एवं अपने लिए एकवचन का प्रयोग नहीं करना चाहिए। आदर सूचक बहुवचन का प्रयोग तो स्पष्ट है किन्तु अपने लिए आदर सूचक बहुवचन का प्रयोग अटपटा-सा लग सकता है; दम्भ का पर्याय माना जा सकता है; किन्तु यहाँ ध्यातव्य है कि अपने लिए एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग करने की अनुशंसा का वही कारण है। वही व्यापकदृष्टि है जो स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा गया है-

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अपने एकल अस्तित्व को नकार कर अपने में सबका अस्तित्व और सबमें अपना अस्तित्व मानने वाली दृष्टि इस बहुवचन के प्रयोग के पीछे कारण है। गीता में भी यह बात कही गयी है-

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।

ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता. ६/२६)

एक 'मैं' में सभी जीव समाहित हो जाए तो वह एक कैसे रहेगा? एकवचन का व्यवहार होने

पर वहाँ व्याकरण सम्बन्धी दोष हो जाएगा। क्योंकि “बहुषु बहुवचनम्” ऐसा पाणिनि का सूत्र है।

अतः हमारे ऋषियों ने कुछेक विशिष्ट उदाहरणों को छोड़कर प्रायशः मन्त्रों में स्तुतियों में ईश्वर से कुछ माँगने के क्रम में बहुवचन का उपयोग किया है।

इसका अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति साधना करता है; पूजा करता है; भक्ति करता है तो उसका फल सम्पूर्ण समाज पर पड़ेगा। यह बहुवचन के प्रयोग का दर्शन है।

भारतीय परम्परा में सबसे अधिक जप किया जानेवाला गायत्री मन्त्र इसी बहुवचन के प्रयोग 'नः' से विलसित है। उसका अन्तिम पाद है- 'धियो यो नः प्रचोदयात्'। अर्थात् सविता हम सबकी बुद्धि को प्रेरित करें; जागृत करें।

इसी प्रकार यजुर्वेद के १६वें अध्याय रुद्राध्याय में रुद्र से यह प्रार्थना की गयी है कि हमारे परिजनों, बच्चों, गायों, घोड़ों को आप न मारें। हम सब हवि लिए आपको आहुतियाँ देते हैं।

मानस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो ऽअश्वेषु रीरिषः।

मा नो वीरान् रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे।।

इसी प्रकार यज्ञ के फल से याज्ञिक समेत सम्पूर्ण जगत् को लाभान्वित करने का उदघोष करते हुए यजुर्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है-

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो ऽअपरीतास ऽउद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद्वृधे ऽअसन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।।१।।

इन्द्र, वृद्धश्रवा, पूषा, विश्ववेद, ताक्ष्य, अरिष्टनेमि, बृहस्पति इन सभी देवताओं से 'हम सबका' कल्याण माँगते हुए ऋषि कहते हैं-

स्वस्ति न ऽइन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।६।।

वैदिक साहित्य ही नहीं पुराणों में भी यह भावना समायी है। भगवतकार भारतवर्ष की महत्ता गाते हुए केवल अपने ही नहीं, सब के लिए प्रार्थना करते हुए कहते हैं-

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं

स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम्।

तेनाजनाभे स्मृतिमज्जनः स्याद्

वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति।।२८।।

(श्रीमद्भागवत : ५.१६.२१-२८)

अतः अबतक स्वर्गसुख भोग लेने के बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ, प्रवचन और शुभ कर्मों से यदि कुछ भी पुण्य बचा हो, तो इसके प्रभाव से हमें इस भारतवर्ष में भगवान् की स्मृति से युक्त मनुष्य-जन्म मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवाले का सब प्रकार से कल्याण करते हैं।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं

प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।

वैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे

मुकुन्दसेवौपयिक स्पृहा हि नः।।२१।।

अहा! जिन्होंने भारतवर्ष में भगवान् की सेवा के योग्य मानव-जन्म प्राप्त किया है। उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है, अथवा इन पर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं? इस परम सौभाग्य के लिए तो निरन्तर हम भी तरसते रहते हैं।



द्वितीय भाग

पौराणिक शापकथाएँ: भारतीय मिथक

○डॉ० जनार्दन यादव

गतांक से आगे

एक दिन राजा परीक्षित शिकार खेलने गये हुए थे। वहाँ उन्हें बड़े जोर की भूख और प्यास लगी। इसलिए वे निकटवर्ती शमीक ऋषि के आश्रम में गये। वहाँ आँखें बन्द किये हुए शमीक ऋषि आसन पर बैठे जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं

से परे निर्विकार ब्रह्मरूप

तुरीय अवस्था में लीन

थे। राजा परीक्षित ने

उनसे जल माँगा।

जब राजा को वहाँ

बैठने का भी

किसी ने न कहा,

तब स्वयं को

अपमानित मानकर

वह क्रोधान्ध हो गये।

‘उन्होंने धनुष की नोंक

से एक मरा साँप उठाकर

ऋषि के गले में डाल दिया

और अपनी राजधानी को लौट आये। शमीक

मुनि का पुत्र बड़ा तेजस्वी था। जब उस बालक

ने सुना कि राजा ने मेरे पिता के साथ दुर्व्यवहार

किया है तो उसने ‘इन मर्यादा भंग करनेवालों को

आज मैं दण्ड देता हूँ’ ऐसा कहकर कौशिकी

नदी के जल से अपने वाणी रूपी वज्र का यह

कहकर प्रयोग किया, ‘राजा परीक्षित ने मेरे पिता

का अपमान किया है, इसलिए आज के सातवें

दिन उसे यह तक्षक सर्प डस लेगा’। ध्यान टूटने पर ब्रह्मर्षि भी राजा को शाप दिये जाने की बात सुनकर दुखी हुए। राजा ने वैराग्य धारण कर अपने चित्त को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया। शुकदेव मुनि तथा अन्य ऋषियों के सान्निध्य

में श्रीमद्भागवत कथा सुनते हुए परमधाम को गये।

ब्रह्मा द्वारा मुख्य

प्रजापति के पद पर

आसीन होकर दक्ष

बहुत अहंकारी हो

गये। एक बार

उनको सम्मानित

करने के लिये

एक सभा

आयोजित की गई

जिसमें त्रिदेव सहित

सभी देवता उपस्थित

हुए। जब दक्ष ने सभागृह

में प्रवेश किया तो ब्रह्मा और

विष्णु को छोड़कर सभी देवता उनके सम्मान

में खड़े हो गये। इधर शिवजी हरिनाम जपते

समाधिस्थ थे, जिस कारण उन्हें दक्ष के आगमन

का पता नहीं चला। आँखें बन्द किए वे चुपचाप

बैठे रहे। इससे दक्ष क्रोधित होकर उन्हें गालियाँ

बककर चले गये। दक्ष का पक्ष लेकर महर्षि भृगु

ने शैव सम्प्रदाय को हरिभक्ति से रहित होने का

शाप दे दिया। उधर शिव के वाहन नन्दीश्वर ने

उपदेश तीन प्रकार के माने गये हैं— प्रभुसम्मित, मित्रसम्मित और कान्तासम्मित। श्रुति एवं स्मृति प्रभुसम्मित उपदेश हैं तो काव्य कान्तासम्मित; किन्तु पुराण-साहित्य को मित्रसम्मित माना गया है। इसकी विशेषता है कि यहाँ कथाओं के द्वारा उदाहरण देकर घुरे रास्ते को छोड़कर अच्छे रास्ते अपनाने के लिए उपदेश दिये गये हैं। इसी शैली में पुराणों की शाप-कथाएँ महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। इन शापकथाओं के माध्यम से अकर्तव्य कर्म को सोदाहरण परिभाषित किया गया है। लेखक ने इस विषय पर विवेचना की है, जिसका दूसरा भाग इस अंक में प्रस्तुत है।

भी अत्यन्त क्रोधित होकर कर्मकाण्डी ब्राह्मणों को वैसा ही शाप दे दिया। इससे संसार के सभी लोग अभिशप्त हो गये। इन बातों से संसार के कल्याणकारी शिवजी अत्यन्त दुखी हो गये। वे आँखें खोलकर बहुत ही मधुर शब्द में कहने लगे कि जो लोग सभी को छोड़कर एकमात्र हरिभजन करते रहेंगे वे भृगु और नन्दीश्वर के शाप से मुक्त रहेंगे।' इतना कहकर शिवजी अपने गणों के साथ कैलाश की ओर प्रस्थान कर गये। दक्ष को सौ पुत्रियाँ थीं। अंतिम पुत्री सती के साथ शिव का विवाह हुआ था। इस कारण शिव दक्ष के जामाता थे।

वृन्दावन में यमुना का एक दह या कुण्ड था। उसके जल में सौभरि ऋषि तपस्या कर रहे थे। एक दिन देवताओं से युद्ध करके जब गरुड़ अमृत-कलश लिये जा रहे थे तो उन्हें भूख लगी। वे इस दह के किनारे कदम्ब-वृक्ष पर अमृत-कलश रखकर इसके जल की मछली पर झपटे। सौभरि ऋषि ने मना किया। लेकिन, गरुड़ महाराज मछली खाये बिना नहीं रुके। ऋषि ने शाप दिया- 'गरुड़, यदि यहाँ फिर आओगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।' गरुड़ चले गये। उनका मुख्य आहार था नाग। नागों का मुख्य निवास स्थान था समुद्र का रमणक नामक द्वीप। वहाँ जाकर वे हजारों नागों को एक ही बार खाया करते थे। वे लोग बहुत चिन्तित हुए। अन्त में नारद ने पंचायत की। तय हुआ कि प्रत्येक अमावस्या को नाग लोग गरुड़ के लिये एक वृक्ष के नीचे आहार रख देंगे और गरुड़ उसे खाकर सन्तुष्ट होंगे; रमणक द्वीप पर आक्रमण नहीं करेंगे। कुछ दिनों तक यह क्रम जारी रहा किन्तु कालिय नाग बड़ा घमंडी था। उसके सौ फण थे। अपनी शक्ति के मद में गरुड़ के लिये रखा हुआ आहार वह स्वयं खा गया। गरुड़ क्रुद्ध होकर उस पर झपटे। जब

कालिय नाग गरुड़ के समक्ष टिक न पाया तो कूदकर समुद्र में भागा। उसे सौभरि ऋषि द्वारा गरुड़ को दिये गये शाप की याद थी। अतः वह वृन्दावन के उस दह में आ पहुँचा। उसका समूचा परिवार भी उसी दह में आकर बस गया।

कालिय नाग के रहने के कारण ही उस दह का नाम कालिय-दह पड़ा। नाग के विष के कारण दह का पानी इतना विषाक्त हो गया कि यदि कोई उस जल का स्पर्श करता, कोई पक्षी उस दह के ऊपर से उड़ता, किसी को उस दह की हवा लग जाती तो वह मर जाता। उसके तट पर केवल एक कदम्ब-वृक्ष बचा था, क्योंकि गरुड़ ने उसपर अमृत-कलश रखा था।

एक दिन कुछ गोप-बालकों और गौओं ने कालिय-दह का पानी पी लिया और तत्काल सभी मर गये। जब कृष्ण को यह समाचार मालूम हुआ तो वे दौड़े। उन्होंने सभी को जिला दिया और कालिय नाग को सदा वश में करने के लिये कदम्ब वृक्ष पर चढ़कर जल में कूद गये। कालिय नाग कृष्ण से हार गया। कृष्ण उसके शिर पर नाचते ऊपर आये। नाग ने क्षमा माँगी और कृष्ण से यह वरदान लेकर कि गरुड़ उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते, अपने परिवार के साथ रमणक द्वीप चला गया।

* * *

अहल्या महाराज वृद्धाश्व की पुत्री तथा महर्षि गौतम की पत्नी थी। महर्षि गौतम एक प्रसिद्ध ऋषि और दार्शनिक थे। उन्होंने ही 'न्यायशास्त्र' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की। वे बाण-विद्या में बड़े निपुण थे। उनकी पत्नी अहल्या सर्वांग सुन्दरी थी। इन्द्र उसपर मोहित हो गया। एक दिन ब्राह्म वेला में गौतम ऋषि गंगा-स्नान करने गये। इधर इन्द्र उन्हींका वेश धारण कर उनके आश्रम में आ पहुँचा और अहल्या को भ्रष्ट

किया। लौटने पर गौतम ऋषि को जब यह घटना मालूम हुई तो उन्होंने पत्नी को पत्थर हो जाने का शाप दिया तथा इन्द्र को 'सहस्रानन' होने का शाप दिया और इन्द्र के सहायक चन्द्रमा को मृगछाला से मारा। जब रामावतार हुआ तो राम विश्वामित्र के साथ जंगल में मुनियों की रक्षा के लिए गये। एक दिन वे गौतम ऋषि के आश्रम में पहुँचे तो देखा कि सुन्दर आश्रम बिल्कुल वीरान, जनहीन पड़ा है और सामने पत्थर की एक नारी मूर्ति है। राम ने विश्वामित्र से उसका रहस्य जानकर अपने चरण-स्पर्श से उसका उद्धार किया। चरण-स्पर्श होते ही अहल्या नारी रूप में जीवित हो उठी और राम की आज्ञा से अपने पति के पास चली गई। राम ने जब राजा जनक के सीता-स्वयंवर में शिवधनुष तोड़ा तो उसकी आवाज सुनकर इन्द्र के सहस्रानन गायब हो गये और वह शापमुक्त हो गये।

* * *

राजा सुद्युम्न अगस्त्य ऋषि को अभ्युत्थान न दे सके। इस कारण उन्हें शाप मिला और उन्हें हाथी के रूप में सागर के मध्य में स्थित द्वीप में रहना पड़ा और वहाँ वरुण के कानन में विचरण करते रहे। एक दिन अजामिल नामक गजेन्द्र को प्यास लगी। वे जलाशय में गये, तभी एक घड़ियाल ने आकर उनका पैर पकड़ लिया। दोनों ओर से खींच-तान होने लगी। एक भीषण युद्ध शुरू हुआ तो दस हजार वर्षों तक चलता रहा। वह मगर कोई मामूली मगर नहीं था। वह गंधर्वराज हूहू थे जो देवल ऋषि के शाप से ग्राह बन गये थे। अतः जब गजेन्द्र थक गये, तब उन्होंने भगवान् को पुकारा। भगवान् भक्त की पुकार सुनकर दौड़े आये और सुदर्शन चक्र से ग्राह का वध किया। ग्राह शापमुक्त होकर पुनः गंधर्व बन गया। गजेन्द्र का उद्धार हुआ। यह घटना गजेन्द्र

मोक्ष के नाम से प्रसिद्ध है। जनश्रुति के अनुसार यह घटना बिहार प्रान्त के सोनपुर नामक स्थान में हुई थी। उस अवतार की स्मृति में वहाँ 'हरिहरनाथ' का मंदिर है, जहाँ प्रत्येक वर्ष कार्तिक-पूर्णिमा के दिन भारत का सबसे बड़ा वार्षिक मेला लगता है।

* * *

शिवभक्त दधीचि ब्राह्मण की पुत्रवधू दुकूला बड़े दुष्ट स्वभाव की थी, जिसके कारण यह परिवार किसी ग्राम में टिक नहीं पाता था। एक समय दधीचि पुत्र सुदर्शन ने शिवरात्रि को संभोग किया और बिना स्नान किये ही उसने शिवपूजा की। इससे रुष्ट होकर शिवजी ने उसे जड़ हो जाने का शाप दिया। इससे दुखी होकर दधीचि ने पार्वतीजी की स्तुति की जिसपर प्रसन्न होकर भगवती ने उसे अपना पुत्र बना लिया। पार्वती के अनुरोध पर शिवजी ने अपने चारों पुत्रों को बटुक रूप में चारों दिशाओं में अभिषिक्त कर दिया और यह विधान कर दिया कि बटुक की पूजा के बिना शिव-पूजा असफल होगी। इस प्रकार शिवजी चारों दिशाओं में बटुकेश्वर महादेव के रूप में अवस्थित हो गये।

* * *

चन्द्रमा ने दक्ष की सत्ताइस पुत्रियों से विवाह करके एक मात्र रोहिणी में इतनी आसक्ति और अनुराग दिखाया कि अन्य छब्बीस अपने को उपेक्षित और अपमानित अनुभव करने लगीं। उन्होंने अपने पति से निराश होकर अपने पिता से शिकायत की तो पुत्रियों की वेदना से पीड़ित दक्ष ने अपने दामाद चन्द्रमा को दो बार समझाने का प्रयास किया लेकिन विफल हो जाने पर उसने चन्द्रमा को 'क्षयी' होने का शाप दिया। देवता लोग चन्द्रमा की व्यथा से व्यथित होकर ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे शाप निवारण का उपाय

पूछने लगे। ब्रह्माजी ने प्रभास क्षेत्र में महामृत्युंजय मंत्र से वृषभध्वज की उपासना करने के लिये कहा। उपासना करने पर शंकरजी प्रकट हुए और चन्द्रमा को एक पक्ष में प्रतिदिन बढ़ने का उन्होंने वरदान दिया। देवताओं पर खुश होकर उस क्षेत्र की महिमा बढ़ाने के लिये और चन्द्रमा (सोम) के यश के लिये सोमेश्वर नाम से शिवजी वहाँ अवस्थित हो गये। देवताओं ने उस स्थान पर सोमेश्वर कुण्ड की स्थापना की। इस कुण्ड में स्नान कर सोमेश्वर ज्योतिर्लिंग के दर्शन-पूजा से सब पापों से निरस्तार और मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।

*

*

*

इक्ष्वाकुवंशीय राजा मित्रसह द्वारा कमठ असुर का ज्येष्ठ भ्राता मारा गया। इसके बाद प्रतिशोध की भावना से कमठ असुर ने राजा के घर रसोइया की नौकरी कर ली। दुष्ट और कपटी असुर ने कृत्रिम सद्व्यवहार से राजा मित्रसह का विश्वास जीत लिया और उसका प्रधान रसोइया बन गया। एक दिन जब राजा ने अपने गुरु वसिष्ठ को भोजन पर आमंत्रित किया तो उस दुष्ट ने भोजन में आदमी का मांस परोस दिया। वसिष्ठजी जान गये। उन्होंने क्रुद्ध होकर राजा को राक्षस हो जाने का शाप दे दिया। सत्य जानकर वसिष्ठजी ने उस शाप की अविध बारह वर्ष कर दी। इधर राजा गुरु के अनुचित व्यवहार पर क्रुद्ध होकर हाथ में जल लेकर गुरु को शाप देने लगा परन्तु अपनी पत्नी मदयन्ती के समझाने पर रुक गया। राजा ने अपने हाथ का पानी ज्योंही पैरों पर डाला, त्योंही उसके पैर का रंग काला पड़ गया और उस दिन से राजा मित्रसह का नाम 'कल्माषपाद' पड़ गया।

एक बार राक्षस बने कल्माषपाद ने एक तपस्वी मुनि और उसके पुत्र को पकड़ कर फाड़

दिया। मुनि-पत्नी ने अपने पति और पुत्र को छोड़ देने की राक्षस से बहुत अनुनय-विनय की लेकिन जब उस राक्षस ने उसकी एक न सुनी तो मुनि-पत्नी ने उसके वंश को निर्मूल करने के लिये शाप दिया कि स्त्री समागम करने पर उसकी मृत्यु हो जाएगी। बारह वर्ष की अवधि व्यतीत होने पर राजा शापमुक्त होकर अपने स्वरूप में आया तो मदयन्ती से समागम करने लगा। उस पतिव्रता को ब्रह्माणी का शाप ज्ञात हो गया, जिससे उसने अपने पति को भोग से विरक्त कर दिया। इससे वह गार्हस्थ जीवन से उदासीन होकर वन में चला गया, लेकिन ब्रह्महत्या ने वहाँ भी पीछा न छोड़ा। उसने अनेक जप-तप, दान-व्रत किये लेकिन ब्रह्महत्या उससे चिपटी ही रही। अन्त में वह शिवभक्त गौतम मुनि की शरण में गया तो ऋषि ने उसपर कृपा करते हुए उसे गोकर्ण नामक शिवक्षेत्र में जाकर महाबलेश्वर लिंग की पूजा करने का सुझाव दिया। वहाँ जाकर शिवजी की आराधना करने से राजा ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त होकर अन्त में शिवपद को प्राप्त हुआ। शिवजी की पूजा से बड़े-बड़े पातकों से मुक्ति पाकर जीव निर्भीक तथा शिवरूप हो जाता है।

*

*

*

महर्षि वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर एक दिन बैठे थे कि एक मिथुनरत क्रौंची करुण विलाप कर उठी। यह देख महर्षि का हृदय करुणा से भर आया और उन्होंने व्याधा को शाप देते हुए निम्न पंक्तियाँ कहीं-

**मा निषाद प्रतिष्ठान्त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥**

(रामायण, बाल २/११)

वाल्मीकि का शोक ही श्लोक बन गया। अनुष्टुप छन्द में वर्णित हैं उपर्युक्त पंक्तियाँ।

महर्षि की कल्याणमयी वाणी सुनकर स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हुए और उन्होंने रामचरित लिखने के लिए उनसे कहा। रामायण की रचना इसी प्रेरणा का फल है।

* * *

भगवान् ने कौतुक के हेतु अपनी शक्ति को दो भागों में बाँट दिया। उनके वाम भाग से चार भुजाओं वाली रमा प्रकट हुई और दक्षिण भाग से दो भुजाओं वाली राधा। भगवान् स्वयं चतुर्भुज नारायण का रूप धारण करके रमा के साथ गोलोक में विहार करने लगे। कालान्तर में जब भगवान् शंकर के अंशावतार महर्षि दुर्वासा के शाप से भगवान् की श्री नष्ट हो गई, तब सिन्धु पुत्री लक्ष्मी को निकालने के लिये समुद्र-मंथन हुआ। लक्ष्मी निकली और उसने समुद्र मंथन करने वाले भगवान् के गले में कमलों की वरमाला डाल दी। भगवान् ने लक्ष्मी को हृदय में अमर स्थान दिया। लक्ष्मी के ही नाम रमा, श्री आदि हैं। वे ही कमला हैं।

* * *

एक पौराणिक आख्यान के अनुसार ब्रह्मा ने संध्या नामक एक कन्या को उत्पन्न किया। लड़की ज्यों ही पैदा हुई कि ब्रह्मा और उसकी लड़की दोनों के मन को काम ने अपने बाणों से विक्षुब्ध किया। इससे प्रजापति और संध्या दोनों बहुत लज्जित हुए। संध्या ने बाद में घोर तप करके विष्णु से यह वर माँग लिया कि अब से पैदा होते ही किसी आदमी को काम विक्षुब्ध न कर सके। तब से विष्णु ने नियम कर दिया कि काम केवल युवकों का ही मन या हृदय विद्ध कर सकता है और क्वचित् किशोर-किशोरियों का। (कालिका पुराण, अध्याय १६-२२) उपर्युक्त प्रजापति और संध्या की कहानी के अनुसार प्रजापति ने काम को शाप दिया कि वह शिव के

नेत्राग्निसम्भूत अग्नि में जले। इसी शापवश काम को शिव की समाधि भंग करने पर उनके त्रिनेत्र की ज्वाला में जलकर भस्म होना पड़ा और यह घटना कामदहन के नाम से प्रसिद्ध हुई।

* * *

शिव के वाहन नन्दी कैसे बने, इसके पीछे एक रोचक शाप कथा है। एक बार की बात है कि पवित्र 'सुरभि' गाय का बछड़ा माँ का दूध पी रहा था। बछड़े के मुख से दूध का झाग अमृत बनकर छलक रहा था। उस बछड़े के क्रीड़ा-कौतुक के क्रम में दूध की कुछ बून्दें शंकर के आनन पर छिटक कर पड़ गयी। शिवशंकर कुपित हो गये। ब्रह्मतेज सम्पन्न ऋषियों ने भगवान् शंकर के अकारण कुपित होने और बछड़े की क्रीड़ा में व्यवधान होते देखकर शिव को शाप दे डाला कि 'जा वृषभ हो जा।' फिर भी शिव का कोप शान्त न हुआ। किन्तु ऋषियों के शाप को तो चरितार्थ करना ही था। इसी कारण शिव गोलोक धाम पहुँचकर माता सुरभि का स्तवन करने लगे। उन्होंने माता सुरभि से प्रार्थना की कि ऋषियों के शाप से मेरा शरीर दग्ध हुआ जा रहा है, मुझे अपने गर्भ में धारण कर शीतलता प्रदान करें। तब सुरभि ने अपने गर्भ में उन्हें धारण कर 'नील' नामक वृषभ को जन्म दिया। इस समय शिव की अनुपस्थिति के कारण जगत् कल्याण का कार्य बन्द होने से चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी देवता एवं मुनिगण गोलोक धाम की ओर दौड़ पड़े। वहाँ सभी विभिन्न गायों के मध्य 'नीलवृष' को केलि करते देखकर विविध प्रकार से उनकी प्रार्थना करने लगे।

देवताओं और ऋषियों की प्रार्थना से नीलवृष रूपी भगवान् शिव प्रसन्न होकर अपने रूप में प्रकट हो गये। तभी मुनियों ने मृत प्राणी की सद्गति और मोक्ष प्राप्ति हेतु वृषभ छोड़ने की

परम्परा शुरू करने की घोषणा की। प्रजापति ब्रह्मा ने उस अवसर पर प्रकट होकर भगवान् शंकर को असंख्य गायों के साथ वह वृषभ भी उपहार स्वरूप प्रदान किया। तब भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर उस वृषभ का नन्दी नामकरण करते हुए अपना प्रिय वाहन बनाया और अपने पूजन से पूर्व वृषभ-पूजन अनिवार्य बताया। प्रजापति ने इसके बाद उन्हें वृषभांक और पशुओं के आराध्य 'पशुपति' कहकर पुकारा। तभी से वृषभ (बसहा) पूजन की परम्परा चली आ रही है।

*

*

*

पुराणों में वर्णित दुर्वासा ऋषि अनसूया के पुत्र थे। इनके पिता का नाम अत्रिऋषि था। कहा जाता है कि माता-पिता ने कठिन तपस्या कर भगवान् शिव के अंश के रूप में इन्हें प्राप्त किया था। सिद्ध पुरुष होने पर भी उन्हें क्रोध बहुत आता था। इनके क्रोध से सभी आतंकित रहते थे। यह एक मनोवैज्ञानिक नियम है कि क्रोधी व्यक्ति दूसरों से अधिक अपनी हानि कर

लेता है। दुर्वासा के साथ भी ऐसा ही हुआ। उन्होंने एक बार क्रोध में आकर अपनी पत्नी को ही शाप देकर भस्म कर दिया।

भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य विवेक से युक्त होने पर भी दुर्वासा के क्रोध का शिकार बन गये। घटना यूँ है कि दुर्वासाजी खीर खा रहे थे और उनके सामने श्रीकृष्ण बैठे थे। अचानक उन्होंने श्रीकृष्ण को आदेश दिया कि वे जूठी खीर अपने शरीर से मल लें। श्रीकृष्ण ने वह जूठी खीर अपने सारे शरीर से मल ली परन्तु यह विचार कर कि ब्राह्मण से मिला प्रसाद अपने पैरों में नहीं लगाना चाहिये; पैरों को छोड़ दिया। दुर्वासा ऋषि ने इसी बात पर क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया- "जा जिस अंग में तूने खीर नहीं मली है वह अभेद्य नहीं रहेगा।" ऐसी कथा है कि एक शिकारी का तीर पैर में लगने से ही श्रीकृष्ण का स्वर्गवास हुआ।

*

*

*

ग्राम+पो.- नरपतगंज-८५४३३५
जिला- अररिया (बिहार)

परीवादस्तथ्यो भवति वितथो वापि महतां

तथा प्युच्चैर्धाम्नां हरति महिमानं जनरवः।

तुलोत्तीर्णस्यापि प्रकटनिहिताशेषतमसो

रवेस्तादृक् तेजो नहि भवति कन्यां गतवतः॥

अपवाह सच्चा हो या झूठा, महान् व्यक्तियों और ऊँचे लोगों के बड़प्पन को यह गिरा देता है। अपना तेज प्रकट करनेवाले सूर्य कन्या राशि (आश्विन मास) में जाने के बाद तुला (तुला राशि और तराजू) होकर भले गुजरें, पर पहले जैसा तेज नहीं रह जाता।

किये जे युग निज वरा निज बूते ॥

कबीर निर्गुण के उपासक थे। उन्होंने जब कहा-

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।

रामनाम को मरम न जाना॥

तब तुलसीदासजी ने इसका उत्तर दिया:-

जेहि इमि गावहिं वेद बुध,

जाहिं धरहिं मुनि ध्यान ।

सोइ दशरथ सुत भगत हित,

कौशलपति भगवान् ॥

निर्गुण भले ही पहुँचा हुआ स्वरूप हो परन्तु वह दुर्लभ है, कठिन है और सगुण सरल है। निर्गुण ब्रह्म ठीक उसी तरह इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता जिस तरह काठ में अग्नि छिपी है परन्तु उसे कोई नहीं जानता। फिर जिस तरह रगड़ने से अग्नि पैदा हो जाती है उस तरह सगुण ब्रह्म प्रत्यक्ष दिखाई देता है:-

प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जन की,

कहहुँ प्रीति प्रीति रुचि मन की ।

पावक युग सम ब्रह्म विवेकू,

एक दारुगत देखिय एकू ॥

फिर तुलसीदास कहते हैं कि निर्गुण और सगुण ब्रह्म दोनों का ज्ञान इन्द्रियों की शक्ति से बाहर है, फिर भी नाम से सुगम हो जाता है। इसी से कहता हूँ कि नाम निर्गुण और सगुण ब्रह्म श्रीरामजी से बड़ा है। निर्गुण ब्रह्म, जो सबमें व्यापक है और नाश रहित होने से सदा एक रस सत् चित् और आनन्द घन की राशि है:-

उभय, अगम युग सुगम नामते,

कहहुँ नाम बड़ ब्रह्म रामते ।

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी,

सत चेतन घन आनन्दराशी ॥

फिर तुलसीदास कहते हैं कि नाम ब्रह्म से

बड़ा होता है वरदान देनेवाला है :-

ब्रह्म राम ते नाम बड़, वरदायक वरदान।

मङ्गलाचरण के बाद सर्वप्रथम शिव-पार्वती-संवाद में सगुण-निर्गुण ब्रह्म की चर्चा होती है। पार्वती को सन्देह होता है कि ब्रह्म तो निराकार हैं, निर्गुण हैं तब उन्हें देह धारण कर फिर सगुण बनने की क्या आवश्यकता हुई? :-

अति आरत पूछौं सुरराया,

रघुपति कथा कहहुँ करि दाया ।

प्रथम सो कारण कहौ विचारी,

निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी ॥

कितनी गम्भीर बात है। एक बार सती ने शिव से इस तरह का प्रश्न पूछा था। उसी प्रश्न के उत्तर को समझने के लिए 'सती' को दूसरा जन्म लेना पड़ा। सती पार्वती बनी और पुनः इस प्रश्न का सव्याख्या उत्तर जानना चाहती है। भगवान् शिव कहते हैं कि अगुण और सगुण में कोई भेद नहीं है ऐसा मुनि पुराण, वेद, पण्डित सभी कहते हैं। निर्गुण रूप रहित है और दिखाई नहीं पड़ता और न उत्पन्न होता है वही भक्तों के स्नेह के वशीभूत होकर सगुण बन जाता है :-

सगुणहिं, अगुणहिं नहिं कुछ भेदा,

गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा ।

अगुण अरूप अलख अज जोई,

भक्त प्रेम वश सगुण सो होई ॥

अब पार्वती के मन में शंका है कि निर्गुण सगुण कैसे बनता है? तुलसीदासजी के शब्दों में भगवान् शंकर एक उदाहरण देते हैं कि जिस प्रकार जल जमकर बर्फ बन जाता है और ताप पड़ने पर बर्फ पुनः जल में परिवर्तित हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्म का रूप भी बदलता रहता है:-

जो गुण रहित सगुण सो कैसे,

जल हिम उपल विलग नहिं जैसे ।

पुराणों में वर्णन है कि जब जगत् की सृष्टि हुई तो स्वयम्भू मनु आए और उनका विवाह शतरूपा से हुआ। एक बार मनु और शतरूपा दोनों ने द्वादश अक्षरों वाले मन्त्र से भगवान् विष्णु का जप किया और कहा कि मैं आपके समान पुत्र चाहता हूँ:-

दानि शिरोमणि कृपानिधि, नाथ कहौं सतभाव ।
चाहौं तुमहि समान सुत, प्रभुसन कौन दुराव ॥

भगवान् विष्णु ने 'एवमस्तु' कहा और फिर उन्होंने स्पष्ट किया कि मेरे समान क्यों? मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।

मनु और शतरूपा यह जानते थे कि वेदों ने जिसे उपमा और नाम रूप रहित चैतन्यानन्द स्वरूप को 'नेति-नेति' कहकर लक्षित किया है और इनके अंश से बहुत प्रकार के शिव, ब्रह्म विष्णु उत्पन्न होते हैं :-

नेति नेति जेहि वेद निरूपा,
चिदानन्द निरूपाधि अनूपा ।
शम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना,
जासु अंश ते उपजे नाना ॥

फिर मनु ने यह भी कल्पना की थी कि भगवान् जब जन्म लेंगे तो उनका स्वरूप क्या होगा। मनु तो पहले कहते हैं कि जो स्वरूप भगवान् शंकर के मन में रहता है, जिसके लिए मुनि लोग यत्न करते हैं वही रूप लेकर आवें। फिर भी मनु को सन्तोष नहीं होता। यहाँ पर तुलसीदासजी निर्गुण और सगुण के सन्धि रूप की कल्पना मनु द्वारा करवाते हैं।

अब मनु भुशुण्डिजी के मन की भी कल्पना करते हैं। वे कहते हैं कि जो भुशुण्डि के मन सरोवर रूपी मन में हंस के समान रहते हैं और वेद जिनकी प्रशंसा सगुण और निर्गुण रूप में

करते हैं, वही स्वरूप मैं भी देखना चाहता हूँ। मनु जानते हैं कि भुशुण्डिजी तो अक्सर कह देते हैं कि मुझे अयोध्या के आँगन में खेलनेवाले राम का रूप चाहिए।

जो भुशुण्डि मन मानस हंसा,
सगुण अगुण जेहि निगम प्रशंसा ।
देखहिं सो स्वरूप भरि लोचन,
कृपा करहु प्रणतारतिमोचन ॥

इस प्रकार भगवान् विष्णु के वरदान के बाद मनु का दूसरा जन्म राजा दशरथ के रूप में हुआ। निर्गुणोपासक कहते हैं कि भगवान् निराकार हैं उनका अवतार नहीं होता। परन्तु समन्वयवादी तुलसीदास कहते हैं कि निराकार ब्रह्म भी भक्तों की इच्छा से अवरित होकर सगुण बन जाते हैं। भगवान् का जन्म नहीं होता, अवतार होता है। जन्म-मरण तो व्यक्ति का होता है। परन्तु भगवान् अवतरित होकर ऐसी लीला करते हैं कि उनका जन्म हुआ सा प्रतीत होता है।

शतरूपा कौशल्या के रूप में आती हैं- गर्भ धारण करती हैं। फिर भगवान् राम का जन्म होता तुलसीदास पहले कहते हैं कि दीनों पर दया करनेवाले कौशल्या के हित करने के लिए भगवान् रामजी अवतार लिए तब मुनियों के मन को हरने वाले भगवान् का अद्भुत रूप देखकर माता कौशल्या प्रसन्न हुई :-

भए प्रकट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी।
हरिषत महतारी मुनिमनहारी अद्भुत रूप निहारी ॥

फिर कौशल्या भगवान् राम के निर्गुण रूप का स्मरण करने लगती हैं और मन, वाणी, बुद्धि से परे त्रिगुणात्मक माया से परे कहकर उनकी स्तुति करती हैं :-

माया गुण ज्ञानातीत अमाना वेद पुराण भनन्ता।

यहाँ पर निर्गुण और सगुण का सन्धिस्थल है। जब कौशल्या को निर्गुण और सगुण ब्रह्म में अभेद होने का ज्ञान उत्पन्न हुआ तो भगवान् राम ने मुस्कुरा दिया :-

उपजा जब ज्ञाना, प्रभु मुमुकाना

चरित बहुत विधि कीन चाहै।

तुलसीदास पहले कहते हैं कि कौशल्या के हित हेतु भगवान् राम अवतरित हुए परन्तु पुनः जब कौशल्या कहती है कि हे भगवान् यह स्वरूप छोड़िए और बाल-लीला कीजिए। तब तुलसीदास कहते हैं कि राम ने ब्राह्मण, गौ, देवता और साधुओं के हित के लिए जन्म लिया :-

विप्र, धेनु सुर सन्त हित, लीन्ह मनुज अवतार ।

निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुण गोपार ॥

गोस्वामी तुलसीदास ने निर्गुण ब्रह्म के निराकार रूप का सगुण रूप में कौशल्या की गोद में क्रीड़ा कर रहे हैं :-

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुण विगत विनोद।

सोइ अज प्रेम भक्तिवश, कौशल्या की गोद॥

राम बड़े होते हैं और विप्र, धेनु, सुर और सन्त के हित हेतु विश्वामित्र के साथ जाते हैं। रास्ते में जनकपुर पड़ता है। राजा जनक देखते हैं और आत्मज्ञानी जनक राम और लक्ष्मण के रूप को देखकर ऐसा मोहित होते हैं और ऋषि विश्वामित्र से पूछते हैं कि हे ऋषि! कहो, ये दोनों सुन्दर बालक कौन हैं ये राजकुल के हैं या मुनिकुल के हैं या ब्रह्म स्वयं अपने दोनों रूप निराकार-साकार बन कर आए हैं। यहाँ पर तुलसीदास ने पुनः निर्गुण-सगुण का सन्धि दिखलाया है :-

**कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक,
मुनि कुल तिलक कि नृप कुल पालक ।
ब्रह्म जो निगम कहि गावा,
उभय वेष धरि सोई कि आवा ॥**

राजा जनक का वैराग्यवान् मन भी रूप से आकर्षित हो गया। निराकार को साकार ने प्रभावित कर दिया। ब्रह्म के निराकार रूप को माननेवाले तत्त्वज्ञानी राजा जनक के सगुण मोहाकर्षण को देखकर मुनि विश्वामित्र भी हँसने लगे। तुलसीदासजी ने सगुण को निर्गुण से बीस कर दिया उन्नीस नहीं।

इनहिं विलोकत अति अनुरागा,

बरबस ब्रह्म सुखदि मन त्यागा ।

कह मुनि विहंसि कहेउ नृपनीका,

वचन तुम्हार न होय अलीका ॥

राजा जनक भी आश्चर्यचकित हैं कि मैं निर्गुण निराकार वादी, विरागी आज ब्रह्मनिष्ठा से अलग होकर इस सगुण रूप के आनन्द का कैसे अनुभव कर रहा हूँ:-

सहज विराग रूप मन मोरा,

थकित होत निमि चन्द्रचकोरा ।

अब दोनों भाई राम-लक्ष्मण विश्वामित्र का हित साधते हुए, अहल्या को तारते हुए धनुष यज्ञ देखने जाते हैं। सर्वप्रथम भगवान् राम जनकपुर की वाटिका का निरीक्षण करते हैं। वहाँ सीताजी भी अपनी सखियों के साथ पार्वतीजी पूजन करने जा रही हैं। श्रीराम का माता सीता से साक्षात्कार होता है- ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य होता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने पुनः निर्गुण और सगुण स्वरूप की सन्धि दिखलाई है। सीताजी चकित होकर चारों तरफ देख रही हैं- उनकी सखियाँ जहाँ इसारा करती हैं वहाँ उन्हें केवल कमल के फूलों की वर्षा दिखाई दे रही है। ब्रह्म तो निराकार है। वह तो यत्र तत्र सर्वत्र है- फिर एक जगह सीता को कैसे दिखाई पड़े:-

चितवति चकित चहुँ दिशि सीता,
कह गये नृपकिशोर मन चीता ।
जहुँ विलोक मृगशावक नेनी,
तहुँ जनु वरष कमलसित श्रेणी ॥

ज्ञान निराकार ब्रह्म को भक्त यत्र सर्वत्र देख रहा है, ढूँढ रहा है परन्तु भक्त को तो ईश्वर ने नेत्र भी दिया है। उसकी सन्तुष्टि भी तो होनी चाहिए। भक्ति में तो सभी अंगों का महत्त्व है। अरे, यह क्या? अरूप का रूप देखते ही, निर्गुण निराकार का सगुण स्वरूप देखते ही सीता के नेत्र थक जाते हैं, देह भोली हो जाती है और स्वयं चकोरी बनकर इकटक निहारने लगती हैं:-

थके नयन रघुपति छवि देखी,
पलकनहू परिहरी निमेखी ।
अधिक सनेह देह भड़ भोरी,
शरद शशिहिं जनु चितव चकोरी ॥

लता के ओट में निर्गुण और सगुण की आँख मिचौनी चल रही है। इस संधिस्थल का विद्वान् तथा रामचरितमानस के निष्णात पं. राम किंकर उपाध्याय ने वर्णन किया है:-

भगवान् दिखाई तो देते हैं पर लता की ओट से। बीच में लता का जाल है- पूरी तौर से दिखाई नहीं दे रहे हैं। पर लता जाल में छिद्र भी तो है, इसलिए कुछ दिखाई भी दे रहे हैं। यह कुछ दिखाई देना और कुछ नहीं दिखाई देना भी उपासना का एक खेल है, साधना का एक आनन्द है। यदि पूरा दिखाई दिया तो व्याकुलता चली जायेगी और बिल्कुल नहीं दिखाई दिया तो व्यक्ति के अन्तःकरण में नास्तिकता आ जायेगी। अतः दोनों का सामंजस्य ही ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य है।”

जब निर्गुण और निराकार ब्रह्म सगुण और साकार हो जाता है तब लता भवन से दोनों भाई प्रकट हो जाते हैं :-

लता भवन ते प्रकट भे,
तेहि अवसर दोउ भाई ।

अब आईये, धनुष यज्ञ प्रसंग की तरफ। जनकपुर की वाटिका में तो भगवान् की निर्गुण से सगुण लीला होती है परन्तु धनुष यज्ञ के समय उसकी पराकाष्ठा हो जाती है। धनुष यज्ञ प्रारम्भ है। सीताजी बुलाई गईं। राजा जनक ने घोषणा की- “जो कोई आज के इस राजसभा में शिवजी के इस कठोर धनुष को तोड़ेगा उसी के साथ तीनों लोक की जीत सहित सीताजी ब्याही जायेंगी। बड़े बड़े भूप, महारथी, योद्धा आए थे परन्तु किसीने उस धनुष को नहीं चढ़ाया। राजा जनक व्याकुल हो उठे। धनुष नहीं टूटेगा तो कितना बड़ा अनर्थ हो जायेगा। राजा जनक कहते हैं कि अगर मैं जानता कि पृथ्वी शूर-वीरों से खाली हो गई है तो यह प्रण नहीं करता:-

जो जानतेउँ बिन भट महि भाई,
तौ प्रण कटि करतेउँ न हँसाई ।

राजा जनक की व्याकुलता को देख लक्ष्मण क्रोधित हो गये। वे मन ही मन सोचने लगे कि अभी तो राजा जनक कहते थे कि मैं विरागी हूँ, निराकार ब्रह्म का उपासक हूँ, तत्त्वज्ञानी हूँ और तुरत व्याकुल होकर रो रहे हैं और धरती को वीर विहीन कह रहे हैं- रघुवंशी राम के रहते हुए इस तरह अनुचित वचन बोल रहे हैं:-

कही जनक जस अनुचित वानी,
विद्यमान रघुकुलमणि जानी ।

भगवान् राम मौन हैं। विश्वामित्र ने कहा- उठो राम! कब तक निराकार बने रहोगे। साकार बनो; धनुष तोड़ो और राजा जनक का दुःख दूर करो:-

उठहु राम भंजहु भव चापू,
मेटहु तात जनक परितापू ।

राम उठते हैं, साधारण स्वभाव से चलने हैं, चलने में व्याकुलता नहीं- शीघ्रता नहीं, मन्त्रमुग्ध हाथी की चाल है उनकी; इधर उधर देखते हैं, देवताओं, पितरों को प्रणाम करते हैं। उधर विलम्ब देखकर राजा जनक की राज सभा घबड़ा रही है, व्याकुल हो रही है। जिस धनुष को रावण, बाणासुर भी स्पर्श नहीं कर सका, उसे ये कोमल राजकुमार तोड़ेंगे कैसे। माँ सीता भी व्याकुल हो उठीं- आँख के आँसू बहनेवाले हैं और सीता उसे आँख के कोने में छिपा रही है; कहीं राम देख न लें:-

लोचना जस रह लोचन कोना।

जैसें परम कृपण कर सोना॥

यह जो व्याकुलता है, उद्विग्नता है- सगुण भक्ति के लक्षण है। कृपण भले ही सोना को चुरा ले परन्तु सीता अपने आँसू को छिपा नहीं सकती। उसपर भगवान् राम की नजर पर जाती है। भगवान् राम तो उसी आसूँ, उसी व्याकुलता की प्रतीक्षा कर रहे थे। अब विलम्ब कैसा:-

देखी विपुल विकल वैदेही

निमिष विहात कल्प सम तेही ।

तृषित वारि बिन जो जनु लागा।

मुये करै का सुधा तड़ागा॥

भगवान् राम जब निर्गुण, निराकार थे। सर्वत्र विराजमान होकर सर्वत्र निरीक्षण कर रहे थे। राजा जनक की मान्यता का समर्थन कर रहे थे परन्तु शक्ति की व्याकुलता बढ़ी तो सगुण रूप में आकर किस तरह धनुष उठाया, चढ़ाया और खींचा- किसी ने नहीं देखा:-

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े

काहु न लखा देख सब ठाढ़े ।

राज जनक विवाह का प्रस्ताव लेकर राजा दशरथ के यहाँ दूत भेजते हैं। राजा दशरथ उस

दूत से तीन प्रश्न पूछते हैं- (१) क्या तुमने मेरे दोनों पुत्रों को देखा (२) क्या अपनी आँखों से देखा- **तुम नीके निज नयन निहारें** (३) क्या हमारे पुत्रों को विदेह ने किस प्रकार जाना- **कहहु विदेह कवन विधि जाने?**

दूत मुस्कुराया और बोला कि जब अन्धेरा हो तो दीपक की आवश्यकता होती है। परन्तु जब रवि स्वयं प्रकट हों तब क्या कोई पूछता है कि जरा दीपक से देखो तो सूर्य उग गये हैं:-

तिन कहँ कहिय नाथ किममि चीन्हे।

देखिय रवि कि दीप कर लीन्हे ॥

फिर भगवान् राम को तो विदेह राज जनक ही जान सकते हैं; क्योंकि वे ब्रह्म के निराकार रूप के उपासक हैं और सन्देह भगवान् के सगुण रूप का भी उन्होंने रसास्वादन किया है।

विवाहोपरान्त देवताओं की इच्छा के अनुसार माँ सरस्वती मंथरा के दिमाग में कुत्सित बुद्धि भर देती हैं; राम का वनगमन होता है।

निषादराज गुह जानते हैं कि राम परम ब्रह्म हैं जो निराकार हैं, अनादि है भेदहीन है, अनुपम हैं:-

राम ब्रह्म परमारथ रूपा

अविगत अलख अनादि अनूपा ।

सकल विकार रहित गत भेदा

कहि नित नेति निरूपाहें वेदा ॥

फिर भी सगुण स्वरूप वाले राम के दर्शन से ही अपने को बड़भागी मानते हैं:-

नाथ कुशल पदपंकज देखे

भयउँ भाग्य भाजन जन लेखें ।

वन-गमन के समय भगवान् राम वाल्मीकि आश्रम में जाते हैं और मुनिवर से पूछते हैं कि मैं कहाँ रहूँ। वाल्मीकि फिर चिन्तन में पड़ जाते हैं।

निराकार ब्रह्म, यत्र-तत्र-सर्वत्र रहनेवाला ब्रह्म पूछता है कि मैं कहाँ रहूँ? वाल्मीकि तो पहले कहते हैं कि हे राम! तुम ही कहो कि तुम कहाँ नहीं हो- मैं वह स्थान दिखा दूँ:-

**पूँछेहु मोहिं कि रहहूँ कहं, मैं पूछत सकुचाउं ।
जहँ न होहु तहं देहु कहि, तुमहिं दिखाउ ठाउँ ॥**

फिर राम मुस्कराते हैं- वाल्मीकि भी हँस देते हैं। 'खग जानहिं खगही की भाषा' कहा गया है न। राम मन ही मन कहते हैं कि सगुण राम को तो बतला दो। वाल्मीकि बड़े ज्ञानी हैं- वे फिर भी राम को सगुण मानने को तैयार हैं तब भाषा बदलकर कहते हैं कि मैं वह स्थान बतलाता हूँ, जहाँ आप लक्ष्मण और सीता के साथ रह सकें। राम तो निराकार हैं- परन्तु लक्ष्मण और सीता के साथ सगुण राम को निवास हेतु कोई स्थान चाहिए :-

**सुनहुं राम अब कहाँ निकेता
बसहु जहाँ सिय लखन समेता ।**

यहाँ भी तुलसीदासजी ने निराकार ब्रह्म से साकार राम की सन्धि दिखलाई है। राम-रावण युद्ध प्रारम्भ होता है- लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं। निराकार ब्रह्म सगुण राम बनकर पूछते हैं- लक्ष्मण कहाँ हैं :-

**व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर,
लक्ष्मण कहाँ पूँछा करुणाकर।**

इतना ही नहीं, निराकार राम साकार बनकर रौने की लीला भी करते हैं जिसे सुनकर सभी विकल हो उठते हैं-

**प्रभु विलाप सुनि कान।
विकल भये वानर निकर ॥**

निराकार ब्रह्म, अनन्त, अद्वितीय राम नागपाश में भी बँधने को साकार लीला करते हैं:-

**नागपाश वर भये रुरारी।
स्ववश अनन्त एक अविकारी॥**

राम तीर चलाते हैं, शीश काटता और वापस हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं कि काल भी जिसकी इच्छा से मर जाता है- वे प्रभु दास के प्रेम की परीक्षा करते हैं-

**उमा काल मरु जा की इच्छा।
सो प्रभु जन की प्रेम परिच्छा॥**

रामचरिमानस के अन्तिम अध्याय उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि निर्गुण सहज है और सगुण को कोई नहीं जानता, क्योंकि सगुण के सहज और कठिन चरित्र सुनकर मुनियों के मन में भी सन्देह होता है।

इस प्रकार रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदासजी ने भक्ति और लीला का निर्गुण और सगुण के समन्वय की विराट् चेष्टा की है और यह सिद्ध कर दिया है:-

**निर्गुण रूप सुलभ अति
सगुण न जनै कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित
सुनि मुनिमन भ्रम होई ॥**



**ग्राम+पो०- बेलाही,
वाया- अथरी
जिला- सीतामढ़ी-८४३३११
(बिहार)**

प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस, (८) पैशाच।

(मनुस्मृति-३/२६)

इनमें अन्तिम दो को अशुभ एवं खराब कहा गया है। महर्षि मनु ने जिस वर्ण का जो विवाह धर्म है एवं जिसके विवाह के जो गुण और दोष हैं तथा सन्तानोत्पत्ति में जो गुण और दोष हैं, उन सभी विषयों पर अपेक्षित प्रकाश डाला है। अच्छे-बुरे, धर्म-अधर्म या उचित-अनुचित की दृष्टि से सबका निरूपण करते हुए अपनी व्यवस्था प्रदान की है। गान्धर्व विवाह का उल्लेख शकुन्तला नाटक में भी किया गया है। इसको लोगों ने प्रेम-विवाह की संज्ञा से अभिभूषित किया है-

**गान्धर्वेण विवाहेन ब्रह्मोऽथ मुनिकन्यकाः ।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चानुमोदिताः ॥**

अभिज्ञान शाकु०

इसी क्रम में उर्वशी और रूखा एवं मालविका और अग्निमित्र वगैरह के नाम भी लिये जा सकते हैं।

धर्मशास्त्र में सवर्ण विवाह पर ही अधिक जोर दिया गया है-

पाणिग्रहणसंस्कारः स्वर्णासूपदिशते ।

(म.स्मृ-३/३५०)

कहीं-कहीं अशास्त्रीय विवाहों का भी उल्लेख किया गया है। कतिपय प्राचीन आख्यानकों या कथानकों में अनुलोम, प्रतिलोम या विलोम विवाह का प्रसंग एवं उल्लेख प्राप्त होता है। मनु ने विवाह को धर्मतः प्रवृत्त विवाह और कामतः प्रवृत्त विवाह के रूप में उल्लेख कर इसके दो भेद कर दिये हैं:-

सवर्णादिर्द्विजातीनां प्रशस्ता दारकर्मणि ।

कामतस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशो वराः ॥

(३/१२)

वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार इसकी काफी

विवेचना की गई है। संक्षेप में आजकल अधिकांश लोग बिना तिलक-दहेज लिए विवाह सम्बन्ध करना ही नहीं चाहते। समाज के भौतिकवादी आडम्बर दृष्टिकोण के कारण तिलक-दहेज पर अंकुश नहीं लग पा रहा है। दूसरों का घर लूटकर अपने घर को भर लेने की इच्छा इधर प्रबल हो उठी है। लोग इसी कारण से कन्या भ्रूण को चिकित्सकों की सहायता से रात-दिन नष्ट करते देखे जा रहे हैं।

अस्तु, यहाँ शास्त्रोक्त सभी प्रकार के विवाहों की परिभाषा क्रमशः प्रस्तुत की जा रही है:-

(१) **ब्राह्म विवाह** :- शिक्षित एवं शीलवान् वर को स्वयं बुलाकर और कन्या-वर को सुन्दर वस्त्र-अलंकार पहनाकर तथा पूजनकर जो कन्यादान किया जाता है, वह ब्राह्म विवाह कहलाता है:-

**आच्छाद्य चार्चयित्वा च श्रुतिशीलवते स्वयम् ।
आहूय दानं कन्यायाः ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तितः ॥**

(म.स्मृ.३/२७)

(२) **दैव विवाह** :- प्रारम्भ किये हुए यज्ञ में अच्छी तरह से कर्म करनेवाले ऋत्विक् को वस्त्र और आभूषण से सजाकर जो कन्यादान किया जाता है, वह दैव विवाह कहलाता है:-

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते ।

अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ॥

(म०स्मृ० ३/२८)

(३) **आर्ष विवाह** :- इसी प्रकार वर या विवाहेच्छुक युवक से एक गाय-बैल का जोड़ा या दो गौ के जोड़े धर्म से लेकर विधिपूर्वक कन्यादान करना आर्ष धर्म विवाह कहा गया है-

एकं गोमिशुनं द्वे वा वरादादाय धर्मतः ।

कन्या प्रदानं विधिवदार्षो धर्मः स उच्यते ॥

(म०स्मृ०-३/२८)

(४) **प्राजापत्य विवाह** :- इसी तरह कन्या और दूल्हा या वर के पिता या अभिभावक परस्पर सहमति के आधार पर 'तुमदोनों धर्मपूर्वक

जीवन यापन करो'- ऐसी आज्ञा देकर एवं पूजन कर जो कन्यादान किया जाता है, वह प्राजापत्य विवाह कहा गया है-

सहोभौ चरतां धर्ममिति वाचानुभाष्य च।

कन्याप्रदानमभ्यर्च्य प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥

(म०स्मृ०-३/३०)

(५) **आसुर विवाह :-** जाति के लोगों को और कन्या को शक्ति के अनुसार धन देकर अपनी इच्छा के अनुसार जो कन्यादान स्वीकार करता है। वह आसुर विवाह कहा गया है:-

ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायै चैव शक्तितः ।

कन्याप्रदानं स्वाच्छन्द्यादासुरो धर्म उच्यते ॥

(म०स्मृ०-३/३१)

(६) **गान्धर्व विवाह :-** कन्या और वर की इच्छा से मैथुन और कामवासना के लिए जो आपस का संयोग तथा सहवास होता है। उसे गान्धर्व विवाह कहा गया है, जैसे दुष्यन्त और शकुन्तला का गान्धर्व विवाह यथा-

इच्छयान्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।

गान्धर्वः स तु विज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥

(म०स्मृ०-३/३२)

(७) **राक्षस विवाह :-** घरवालों को मारकर, उनको हर तरह से घायल एवं उनके घर-द्वार को तोड़-फोड़कर चीखती, चिल्लाती और पुकारती हुई कन्या का घर से हठ पूर्वक हरण कर लेना ही राक्षस विवाह की परिभाषा है:-

हत्वा छित्वा च भित्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् ।

प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥

(म०स्मृ०-३/३३)

(८) **पैशाच विवाह :-** जहाँ सोई हुई या मदिरापान से मतवाली अथवा असावधान कन्या के साथ एकान्त में संभोग किया जाता है, वह अधम और पापिष्ठ विवाह पैशाच नामक कहा गया है-

सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति ।

स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥

(म०स्मृ० ३/३४)

सारांशतः विवाह एक वैदिक संस्कार है। संस्कार वह धार्मिक विधि है, जो व्यक्ति को एक विशेष स्थिति में उसके दायित्व एवं नैतिक कर्तव्य का बोध कराता है। इसके द्वारा व्यक्ति का आचार, विचार और व्यवहार तीनों परिष्कृत होते हैं। हिन्दू विवाह-संस्कार में कन्यादान अग्निदेव को साक्षी बनाकर पति-पत्नी को साथ रहने की शपथ एवं सप्तपदी आदि ऐसे शुभकर्म हैं, जिनके द्वारा स्त्री-पुरुषों के अन्दर प्रसुप्त प्रेम-भावना तथा कर्तव्य-भावना नैतिकता के साथ जुड़ती है। दोनों का हृदय एकीकृत होकर अद्वैत का अनुभव करने लगता है। सदा एक साथ रहने और मिल-जुलकर सुख-दुःख सहने के लिए दोनों तैयार हो जाते हैं। विवाह के बाद पति-पत्नी परस्पर जन्मान्तरों का साथी अपने को मानने लग जाते हैं। दिनोंदिन उनका प्रेम प्रगाढ़ और प्रौढ़ होने लगता है। इस प्रकार विवाह केवल औपचारिक बन्धन न रहकर हृदय और आत्मा का बन्धन बन जाता है। निष्कर्षतः विवाह की पावनता, आध्यात्मिक उच्चता, भावात्मकनिष्ठा एवं कर्तव्य-परायणता को देखते हुए इसको एक वैदिक संस्कार माना गया है।

विवाह का प्रमुख उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति है। धर्मपरायण पुत्र ही देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण से मुक्ति दिला सकता है। देव, ऋषि और पितरों की दया से मुक्ति दिला सकता है। देव, ऋषि और पितरों की दया से ही सुन्दर स्वास्थ्य, अमूल्य ज्ञानबोध एवं हर प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। इनके आशीर्वाद एवं अनुग्रह से ही वंश की कीर्तिपताका लहराती है। अपने पितरों को स्वधा प्रदान कर धर्मशील पुत्र उनका सही उत्तराधिकारी बन जाता है। देखिए,

मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्म विवाह से ब्याही हुई कन्या का पुत्र धर्मात्मा होने से दश आगे के (पिता आदि को) और दश पिछले (पुत्र आदि को) एवं इक्कीसवें अपने को पाप से मुक्त कराता है। इसी प्रकार दैव विवाह वाली स्त्री से उत्पन्न पुत्र पिछले और अगले सात-सात को तथा आर्ष विवाह वाली स्त्री से उत्पन्न पुत्र तीन-तीन को एवं प्राजापत्य विवाह से उत्पन्न पुत्र छः-छः को पाप से छुड़ाता है। वे सबके सब परम तेजस्वी, सुन्दर, धनवान्, गुणवान्, दीर्घायु और काफी सांसारिक सुख-भोग करनेवाले होते हैं :-

दश पूर्वान् परान् वंश्यान् आत्मानं चैकविंशकम् ।
ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितृन् ॥
दैवोढाजः सुतश्चैव सप्तसप्त परावरान् ।
आर्षोढाजः सुतस्त्रीस्त्रीन् षट् षट् कायोढजः सुतः ॥
ब्राह्मदिषु विवाहेषु चतुर्ष्ववानु पूर्वशः ।
ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्राः जायन्ते शिष्टसम्पत्ताः ॥
रूपसत्त्वगुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः ।
पर्याप्त भोगा धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं सभाः ॥

(मनुस्मृति-३/३७-४०)

अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए धर्मशास्त्रकार ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि आसुर आदि नीच विवाहों में घातक, झूठे और ब्रह्म धर्म से वैर करने वाले पुत्र जन्म लेते हैं। स्त्रियों के निन्दनीय प्रशस्त विवाहों से नीच सन्तान होती है। अतः निन्दित विवाह त्याज्य हैं:-

इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः ।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मं द्विषः सुताः ॥

(मनु-३/४१)

अनिन्दितैः स्त्री विवाहै रनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान् निन्द्यान विवर्जयेत्॥”

(३/४२)

हमारे यहाँ सामान्यतः यज्ञ-उत्सव आदि धर्मकार्य का सम्पादन भी गृहस्थजनों के हेतु बिना

स्त्री के दुष्कार माना गया है। स्त्री को वाम भाग में बैठाकर अनेक शुभकार्यों का सम्पादन प्रदर्शित करते हुए आचार्य मनु ने लिखा है कि जहाँ नारियों का सादर सम्मान किया जाता है, वहीं देवता रमण करते हैं अर्थात् निवास करते हैं। जहाँ नारियों का अपमान और तिरस्कार किया जाता है, वहाँ की सारी क्रिया निष्फल हो जाती हैं। इतना ही नहीं, कुलवधुओं को यातना देने पर उसका दुष्प्रभाव वंश पर भी पड़ता है:-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्रदेवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वाः तत्राफलाः क्रियाः ॥
शोचन्ति यामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥

(मनुस्मृति-३/५६,५७)

गृहिणी के बिना गृह की कल्पना भी गृहस्थों के लिए निराधार है-

गृहिणी गृहमुच्यते और बिनु घरनी घर भूत का डेरा” जैसी कहावतें सही-सही पाई जाती हैं। पत्नी की वास्तविक उत्तराधिकारिणी तो आगे चलकर उसकी पुत्रवधु ही होती है।

समाजशास्त्र के अनुसार विवाह एक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था है, जो कुछ प्राप्त सामान्य नियमों के अन्तर्गत स्त्री-पुरुष की वासनात्मक सन्तुष्टि के अवसर प्रदान करने के साथ ही बच्चों के पालन-पोषण तथा नियमित सामाजिक जीवन के लिए एक समुचित पर्यावरण की सुविधा प्रदान करती है। संसार में कोई भी समाज विवाह संस्था के बिना अपने को संगठित नहीं रख सकता। यह संस्था यूरोप और अमेरिका जैसे विकसित समाजों के लिए जितनी आवश्यक है, उतनी ही आवश्यक ध्रुव प्रदेशों तथा दूर-दूर तक फैले हुए द्वीपों में रहनेवाली जन-जातियों के लिए भी। हॉवेल के अनुसार ‘विवाह सामाजिक नियमों का एक पुंज है जो वैवाहिक युग के पारस्परिक और उनके बच्चों के तथा समाज के

प्रति सम्बन्धों को नियन्त्रित तथा परिभाषित करता है। इससे ज्ञात होता है कि विवाह स्वयं में एक आदर्श नियम है। लूसी मेयर ने विवाह को परिभाषित करते हुए लिखा है कि वह स्त्री पुरुष का ऐसा योग है, जिसमें स्त्री से उत्पन्न बच्चा माता-पिता की वैध सन्तान माना जायगा। इसमें विवाह को स्त्री और पुरुष के ऐसे सम्बन्धों के रूप में स्वीकार किया गया है, जो सन्तानों को जन्म देते हैं, उन्हें वैध घोषित करते हैं तथा इसके कारण माता-पिता और बच्चों को समाज में कुछ अधिकार एवं स्थान मिलते हैं। वेस्टरमार्क की परिभाषा के अनुसार विवाह एक या अधिक स्त्रियों के साथ होनेवाला वह सम्बन्ध है जो प्रथा अथवा कानून द्वारा स्वीकृत होता है। जिसमें आनेवाले उभयपक्षों तथा उनके उत्पन्न बच्चों के अधिकार एवं कर्तव्यों का समावेश होता है। जेकब्स और स्टर्न के अनुसार विवाह एक पति-पत्नी अथवा पति-पत्नियों के सामाजिक सम्बन्ध का नाम है। यह उस संस्कार का भी नाम है जिसके द्वारा पति-पत्नी परस्पर सम्बन्ध में बँध जाते हैं। गिलिन के अनुसार विवाह एक प्रजननमूलक परिवार को स्थापित करने के लिए सामाजिक मान्यता प्राप्त विधि है।” लॉबी के शब्दों में- “विवाह उन स्वीकृत संगठनों को प्रकट करता है जो इन्द्रियों के सन्तोष के बाद स्थिर रहते हैं और पारिवारिक जीवन की पृष्ठ भूमि बनाते हैं।”

अन्त में, उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से यह तथ्य ज्ञात होता है कि विवाह का मूल आधार कामवासनात्मक यौन सम्बन्ध है। सामाजिक मान्यता मिलने पर यह विवाह संस्था का रूप धारण करता है। यद्यपि विवाह के पहले भी मनुष्य का यौनसम्बन्ध सम्भव है, लेकिन इसको सामाजिक मान्यता नहीं मिलती है। विश्व के प्रत्येक समाज में मनुष्य के काम वासनात्मकयौन सम्बन्ध के ऊपर किसी न किसी रूप में नियंत्रण पाये जाते हैं। इसी कारण विवाह की प्रथाएँ भी हरेक समाज में अलग-अलग ढंग की होती हैं।

विवाह चाहे स्त्री-पुरुषों की इच्छा से हो या स्त्री को बलपूर्वक पत्नी बनाया गया हो अथवा धार्मिक रूप से किया गया विवाह हो, किन्तु इन सबके पीछे या तो सामाजिक समर्थन होना चाहिए अथवा कानूनी मान्यता। व्यावहारिक रूप से विवाह के हेतु इन सारे तथ्यों का होना अनिवार्य है। इनके अभाव में स्त्री पुरुष के यौन सम्बन्धों को अनैतिक माना गया है।

हमारा धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण विवाह संस्कार को सदा पवित्रता एवं शुद्धता के साथ जोड़ता है। नैतिक कर्तव्यों से युक्त धर्म को यह हमेशा आगे रखता है-

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः (जो सांसारिक अभ्युदय अथवा उन्नति एवं पारलौकिक श्रेय का कारण बनता है, वह धर्म कहा गया है)। पूर्णनैतिक एवं धर्मात्मा पुरुष कभी भी अवाञ्छनीय कर्म में प्रवृत्त ही नहीं हो सकता है। भारतीय वाङ्मय एवं साहित्य में पुरुषार्थचतुष्टय के मूल में धर्म को प्रमुख स्थान दिया गया है। यहाँ की सोच के अनुसार धर्मपूर्वक अर्थ एवं काम का क्रमशः अर्जन और सेवन करना चाहिए। धर्मानुकूल काम को यहाँ कभी भी निषिद्ध नहीं माना गया है।

वास्तव में, हमारे यहाँ विवाह संस्कार की परम्परा अपनी संस्कृति से जुड़ी हुई है। धर्म कर्तव्य भावना से मनुष्य को जोड़ता है। विवाह के बाद मनुष्य को अपने पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करना पड़ता है और धीरे-धीरे उसमें त्याग भावना का विकास होता है। दायित्व बोध, नैतिकता और कर्तव्य परायणता के साथ-साथ मनुष्य निरन्तर सुखी एवं समृद्ध जीवन की ओर अग्रसर होने लगता है।



अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
गोपेश्वर महाविद्यालय, हपुआ
गोपालगंज, बिहार

bb

श्रीरामचरितमानस में श्रीराम की शरीर-कान्ति

○ प्रो० रामाश्रय प्रसाद सिंह

bb

पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी की रंग-योजना अद्भुत एवं अद्वितीय है। अपने द्वादश ग्रन्थों में महाकवि तुलसीदास ने विविध रूपों में रंगों का प्रयोग किया है। केवल रामचरितमानस में ही इनकी रंग-योजना के विविध रूप देखने को मिलते हैं। सौन्दर्य-अंकन में गोस्वामी की समता हिन्दी-साहित्य के किसी काल के किसी भी कवि से नहीं मिलती। भगवान् श्रीराम के सौन्दर्य-वर्णन में इस महाकवि ने अद्भुत सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। श्रीराम की जिस अंग-कान्ति की उपमा जिस रूप में सटीक बैठती है, प्रकृति के उसी उपमान को उन्होंने अपनी भाव-दृष्टि से ग्रहण कर व्यक्त किया है। इसलिए श्रीरामचरितमानस में श्रीराम की मंजुल अंग-शोभा का मनोहारी वर्णन पग-पग पर देखने को मिलता है। प्रत्येक अंग-छवि के अंकन में गोस्वामीजी के तदनुरूप कान्ति का बड़ा ही सुन्दर एवं श्रेष्ठ सामंजस्य बैठाया है।

इसके लिए मननशील महाकवि को पृथ्वी से लेकर आकाश एवं स्वर्ग तथा द्युलोक तक अपनी प्रज्ञा, प्रतिभा एवं प्रकृष्ट कल्पना को

दौड़ाना पड़ा है। प्रतिभा का श्रेष्ठ धनी कवि ही अपनी कल्पना की उड़ान से भाव-सामग्री का चयन कर सकता है। अंग्रेजी-साहित्य के श्रेष्ठ कवि एवं नाटककार विलियम शेक्सपियर ने अपनी एक कविता में कहा है कि सौन्दर्यमद में झूमती हुई कवि की कल्पना स्वर्ग से लेकर धरती तक एवं धरती से लेकर आकाश तक आती-जाती रहती है-

"The poet's eye in fine frenzy rolling, Both glUnce from heaven to eUrth Und eUrth to heaven."

ध्यातव्य

है कि गोस्वामीजी

भागवत चेतना से

शून्य कविता में न

तो कोई चाह देखते हैं,

न कोई आकर्षण। वे यह

मानते हैं कि समस्त सौन्दर्य का स्रोत

राम-नाम है। उसे ही आधुनिक शब्दावली में

भागवत-चेतना कहते हैं। हमारे प्राचीन आचार्य

मानते हैं कि काव्य या साहित्य की आत्मा चारुता

या सौन्दर्य है। गोस्वामीजी की भी यही सुदृढ़

धारणा है-

भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ।

राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥

उपमा अलंकार को 'शैलूषी' कहा गया है, जो अपने अनेक रूपों में सादृश्य और साधर्म्यमूलक अलंकारों की भंगिमा बिखेरती हुई काव्य के रंग-मंच पर नृत्य करती है। इन सभी अलंकारों का प्रयोग कवियों ने अपनी कल्पना अपनी सूक्ष्म भावनाओं से पाठकों को परिचित कराने के लिए किया है अपने अन्तःकरण के भाव को चिरपरिचित स्थूल बिम्बों के द्वारा प्रकट करने का यह शिल्प तुलसी के 'मानस' में भी प्राप्त है। अपने आराध्यदेव एवं चरित नायक श्रीराम के सगुण स्वरूप को तुलसी ने किस प्रकार उपमित किया है इस विषय पर यह लेख प्रस्तुत है।

विद्युतबदनी सब भाँति सँवारी।
सोह न बसन बिना बर नारी॥

-मानस १. ६. ३, ४.

उनकी सुदृष्टि में काव्य की शोभा का स्रोत अलंकार, गुण या वक्रोक्ति आदि नहीं, अपितु रामनाम, रामयश और रामचरित ही है। भगवान् राम में अनन्त शक्ति, अनन्त शील एवं अनन्त सौन्दर्य का त्रित्व है। रामचरितमानस में महाकवि तुलसी ने श्रीराम के माध्यम से जीवन की शुभ्रता, शिवता एवं स्वच्छता को ही बिंबित किया है। श्रीराम **समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः** हैं। उनके समग्र गुणों-माधुर्य, सौन्दर्य, सौशील्य, शक्ति, कृपा, दया, करुणा, अनुग्रह, अनुकम्पा, अनुक्रोश, प्रसाद, छोह, ममता आदि का वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी सन्तों, महात्माओं, विपश्चित् विप्रों, कवियों, साहित्यकारों ने यथामति यथाशक्ति उन गुणों का वर्णन करने का सत्प्रयास किया है। यहाँ इस निबंध में श्रीरामचरितमानस में श्रीराम की शरीर-कान्ति का वर्णन, जिसे गोस्वामीजी ने प्रस्तुत किया है, यथामति करने का पावन प्रयत्न किया गया है। यह वर्णन ऐसा दिव्य है कि एक बृहत् ग्रन्थ की अपेक्षा रखता है। फिर भी उसकी संक्षिप्त झाँकी यहाँ देखने को मिलेगी।

श्रीरामचरितमानस में रंग-योजना के लिए भक्ति की विमल दृष्टि अपनाई गयी है। इसीलिए इस वर्णन में दिव्यता है, विमलता है, मधुरता है, स्वच्छता एवं शुभ्रता है, शिवता है और श्रेष्ठ सौन्दर्य अंकन के सारे गुण विद्यमान हैं। भगवान् राम के विभिन्न अंगों की दिव्य कान्ति एवं उनकी सुषमा-चरम शोभा को व्यक्त करने के लिए गोस्वामीजी ने सागर के तल से लेकर ऊँचे अनन्त आकाश में स्थित सूर्य, चन्द्र, विद्युन्मंडल, मेघ तक को लिया है। फिर भी कवि को तृप्ति ही नहीं मिलती। किसी एक उपमा से कवि तृप्त

नहीं होता। विश्वविमोहन, निखिलानन्द-सन्दोह, सौन्दर्यों के सौन्दर्य, सुषमाओं की सुषमा, शोभाओं की शोभा भगवान् राम का सौन्दर्य किसी एक वस्तु से उपमित भी कैसे हो सकता है? श्रीराम के विराट् व्यक्तित्व का सौन्दर्य-बोध विश्व या सृष्टि की किसी एक वस्तु से उपमित भी नहीं हो सकता। इसलिए महाकवि तुलसी ने श्रीराम के दिव्य सौन्दर्य को चित्रित करने के लिए विभिन्न वस्तुओं एवं विभिन्न उपकरणों का सहारा लिया है। जिस प्रकार गोस्वामीजी अपने आराध्य-युगल सीता और राम को सारी सृष्टि में व्याप्त देखते हैं, उसी प्रकार उनके सौन्दर्य-अंकन में वे संसार के विभिन्न उपकरणों में से चुनकर कुछ श्रेष्ठ एवं समीचीन उपकरणों को लेते हैं। फिर भी श्रीराम के विराट् व्यक्तित्व का भाव-बोध इन उपकरणों में नहीं अँट पाता।

यहाँ श्रीराम के शरीर की श्यामता को उपमित करनेवाले उपकरणों पर ही विचार किया जायेगा। महाकवि तुलसी का एक उद्देश्य यह भी है कि वे श्रीराम के सौन्दर्य-वर्णन के माध्यम से श्रीराम के व्यक्तित्व के तेजस्वी सौन्दर्य का उद्घाटन करना चाहते थे, जो विमल है, तप, त्याग और तपोवन से दीप्त है तथा जिसमें संकल्प, साहस और तेज है। इसीलिए आदि से लेकर अन्त तक श्रीरामचरितमानस में शील, शक्ति और सौन्दर्य का अद्वितीय उद्घाटन है। इस सौन्दर्य-सुधा के अंकन में गहराई और विस्तार दोनों हैं।

महाकवि तुलसी के राम शोभा-धाम हैं, सुषमा-सागर हैं, लोक-लोचन सुखदाता हैं, अभिराम हैं। उनके श्यामल शरीर के एक-एक अंग की सुषमा-शोभा पर कोटि-कोटि कामदेव न्योछावर हैं-

अंग अंग पर बारिअहिं कोटि सत कोटि काम।

-मानस- १. ११०.

गोस्वामीजी ने उन्हें 'सुषमा-सदन' भी कहा है। मनु-शतरूपा के समक्ष उपस्थित श्रीराम की अतुलित छवि का वर्णन करते समय गोस्वामीजी किसी एक वस्तु से उपमा देने में असमर्थ हो जाते हैं और कह पड़ते हैं-

नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

मानस-१.१४६.

ऐसा अद्भुत एवं अग-जग को मोहनेवाला श्रीराम का रूप है। भला उस रूप की उपमा प्राकृत पदार्थों से देकर कभी तृप्ति हो सकती है? कदापि नहीं। इसीलिए गोस्वामीजी श्रीराम को कहते हैं-

काम कोटि छवि स्याम सरीरा ।
नील कंज बारिद गंभीरा ॥
अरुहन चरन पंकज नख जोती ।
कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥

मानस-१.१६८.१,२.

कामदेव श्याम हैं और छविमान भी। सृष्टि में कामदेव सबसे अधिक सुन्दर माना गया है। एक कामदेव से त्रैलोक्य मोहित हो जाता है। करोड़ों कामदेवों के एकत्र होने पर जैसी छवि होगी, वैसी ही छवि श्रीरामजी के साँवले शरीर की है।

श्रीरामचरितमानस में श्रीराम के श्याम शरीर की कान्ति की उपमा जिन प्राकृत पदार्थों से की गई है, उनमें छह उपकरण प्रमुख हैं। ये सभी के सभी उपकरण बड़े सार्थक और समीचीन हैं। श्रेष्ठ कवि किसी एक ही भाव-बोध का अनुगामी नहीं होता। उसकी कल्पना एक ही दिशा में धावमान नहीं होती और न एक ही खूँटे में बँधी होती है। जल, थल और नभ तीनों दिशाओं में धावित होकर तदनु रूप भावों को व्यक्त करनेवाली प्रज्ञा ही कवि की काव्य-प्रतिभा का मानदण्ड होती है। श्रीराम की शरीर-कान्ति के लिए नवनवोन्मेष प्रज्ञा के धनी कवि गोस्वामी तुलसीदास

ने जिन छह उपकरणों का चयन किया है, उनमें कमल और यमुना जल से सम्बद्ध है; मरकतमणि, मयूर कंठ एवं तमाल वृक्ष थल से सम्बद्ध है और मेघ नभ से सम्बद्ध है। भगवान् श्रीराम का पीताम्बर मेघ की बिजली से सम्बद्ध है। इस प्रकार श्रीराम की सर्वव्यापकता की पुष्टि अपने आप हो जाती है।

कमल- मानस के अनेक प्रसंगों में भगवान् राम की श्यामता को कमल से उपमित किया गया है। कमल कई प्रकार के होते हैं जैसे नीलकमल, लाल कमल, श्वेतकमल आदि। जहाँ तक श्रीराम के शरीर की कान्ति का प्रश्न है, वहाँ गोस्वामीजी ने नीलकमल से ही उस कान्ति की समता दिखलाई है। नीलकमल या नीलपंकज से ही श्रीराम की शरीर-कान्ति की समता क्यों दिखलाई गई है, इसके कई कारण हैं-

- (क) कमल कोमलता एवं कान्ति का प्रतीक है।
- (ख) कमल सरसता एवं सुन्दरता का प्रतीक है।
- (ग) वह तरलता एवं निर्लेपता का द्योतक है।
- (घ) कमल दूसरे को प्रसन्न देखकर प्रसन्न होता है। सर्वप्रकाशक सूर्य को उदित देखकर वह खिलता है और उनके अस्त होते ही बन्द हो जाता है।
- (ङ) कमल अपने रस और पराग का दान देता है, भ्रमर (गुणग्राही) को बाँट देता है।
- (च) कमल का सौन्दर्य लोक-लोचन सुखदाता है।

जब हम श्रीरामचरितमानस का गहरा अध्ययन करते हैं, तब हम पाते हैं कि जहाँ-जहाँ श्रीराम की कोमलता, कमनीयता एवं कान्ति को बिंबित करना पड़ा है, वहाँ-वहाँ गोस्वामीजी ने नीलकमल से उनकी शरीर-कान्ति की उपमा दी

है। उसी प्रकार जहाँ-जहाँ श्रीराम की शोभा की सरसता, तरलता एवं निर्लेपता को बिंबित करना पड़ा है, वहाँ-वहाँ भी नीलसरोरुह की उपमा दी गई है। गुणग्राही जनों एवं लोक के बड़भागी जनों के नेत्रों को आनन्द देने के लिए भी नीलकमल की उपमा दी गई है। श्रीराम कोमल हैं, कमनीय हैं और अद्वितीय कान्ति से संयुक्त हैं। वे रस से पूर्ण हैं- 'रसो वै सः'। सुन्दर, सरस, तल और निर्लेप हैं। वे सदा प्रसन्न रहते हैं और सबको अपनी प्रसन्नता बाँटते हैं, गोस्वामीजी ने अयोध्याकाण्ड के मंगलाचरण में इसी आशय की प्रार्थना की है-

प्रसन्नतां यान गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुखतः।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

मानस-२मंगला० २.

इस प्रकार अनन्तगुणों से सम्पन्न अद्वितीय शोभा एवं छवि के सुधा-सागर सदृश व्यक्ति वाले श्रीराम हरि के श्यामल शरीर की उपमा नीलकमल से देना बड़ा सार्थक, समीचीन एवं साभिप्राय है।

अब मैं श्रीरामचरितमानस के कुछ श्रेष्ठ प्रसंगों के आधार पर यह दिखलाने का प्रयास करूँगा कि क्यों गोस्वामीजी ने श्रीराम की शरीर-कान्ति की उपमा नीलकमल से दी है?

(क) बालकाण्ड के आरम्भ में ही क्षीर-सागर निवासी शेषशायी भगवान् नारायण की अद्वितीय शोभा-सुषमा का वर्णन करते समय गोस्वामीजी ने उनकी शरीर-कान्ति की उपमा नीलकमल से दी है-

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करौ सौ मम उरधाम सदा छीरसागर सयन॥

मानस-१.सोरठा-३.

इस सोरठा में भाव यह है कि जिस प्रकार नीलकमल कोमल और आर्द्र होता है, उसी प्रकार शेषशायी नारायण भी करुणायुक्त, कोमल

एवं मृदुलमूर्ति हैं। श्यामरंग का कमल प्रभु श्रीनारायण के स्वरूप का घोटक है। श्याम रंग पर रंग नहीं चढ़ता। यह सदा एकरस रहता है। यह भगवान् के अच्युत भाव का घोटक है। भगवान् अपने भक्तों पर, शरणागतों पर एक रस प्रेम करते हैं। मानसजी में प्रभुराम की मृदुलता, कमनीयता-कोमलता एवं उनके मृदु-कोमल स्वभाव का अनेक प्रसंगों में वर्णन है।

(ख) मनु-शतरूपा के तप के समय भक्तवत्सल, कृपानिधान, विश्वास प्रभु भगवान् के प्रकट होने के समय उनकी अपूर्व, अप्रतिम तथा अद्वितीय शोभा के वर्णन के क्रम में भी गोस्वामीजी ने नीलकमल, नीलमणि और नील मेघ के उपमान को उपस्थित किया है, फिर भी उन्हें तृप्ति नहीं होती-

नील सरोरुह नीलमणि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

मानस-१.४६

यहाँ नील सरोरुह (कमल) कोमलता का प्रतीक है, नील मणि अद्वितीय आभा का प्रतीक है और नील नीरधर (मेघ) सरसता का प्रतीक है। महाकवि तुलसी भगवान् की अप्रतिम कान्ति की अभिव्यंजना के लिए किसी एक उपकरण से तृप्त नहीं होते। इसलिए वे एक ही साथ तीन-तीन पदार्थों को लेते हैं और फिर भी तृप्त नहीं होते। 'देवी-भागवत' में भी एक ऐसा ही श्लोक आया है- **नीलोत्पलदलश्यामः कोटिकन्दर्पमोहनः।** श्रीरामचरितमानस में जिस दशरथ-सुत भगवान् राम का वर्णन है, वे क्षीर सागर शेषशायी कृपानिधान, भक्तवत्सल भगवान् नारायण ही हैं। सोरठा तथा उपर्युक्त दोहा में चराचर जगत् में निवास करनेवाले प्रभु का ही भावमय वर्णन है।

(ग) बालक श्रीराम की अप्रतिम छवि के अंकन में भी गोस्वामीजी ने उनके श्याम शरीर

की कान्ति को उपमित करने के लिए कंज उपमान को उपस्थित किया है-

कामकोटि छबि स्याम शरीरा।
नील कंज बारिद गंभीरा॥

-मानस- १. १६८- १

नीले कमल और घने बादल के समान उनके साँवले शरीर में करोड़ों कामदेवों की शोभा पड़ी थी। यहाँ भी एक उपमा से काम नहीं चला। अतः दो-दो उपमाएँ दी गई हैं। ध्यातव्य है कि गोस्वामीजी श्रीराम की शोभा के समक्ष करोड़ों कामदेवों की शोभा को भी न्यून और हीन समझते थे।

(घ) विश्वामित्र मुनि के साथ जाते हुए श्रीराम-लक्ष्मण की शोभा के वर्णन के क्रम में श्रीराम की शरीर-कान्ति को नीले कमल और तमाल वृक्ष से उपमित किया गया है-

अरुन नयन उर बाहु बिसाला।
नील जलज तनु स्याम तमाला॥

-मानस- १. २०८. १

भगवान् राम के नेत्र लाल, छाती चौड़ी और भुजाएँ विशाल थीं। नीले कमल एवं तमाल के वृक्ष के समान उनका साँवला शरीर था। यहाँ भी भगवान् श्रीराम की शरीर-कान्ति के लिए दो उपमानों नील कमल एवं तमाल वृक्ष को लिया गया है।

(ङ) पुष्पवाटिका में लता-ओट से निकलते हुए श्रीराम और लक्ष्मण की शोभा का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने नीले और पीले कमलों की आभा को उपमान के रूप में चुना है-

सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा।
नील पीत जल जाभ शरीरा॥

-मानस- १. २३२. १

(च) अयोध्याकांड में भगवान् राम के कोमल अंगों से युक्त श्याम शरीर के लिए भी नीलकमल को उपस्थित किया गया है-

नीलाम्बुजश्यामल कोमलाङ्गं
सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं
नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

-मानस- २. मंगलर०३.

इसी प्रकार पूरे श्रीरामचरितमानस में देखा जा सकता है कि श्रीराम के श्याम शरीर की कान्ति के लिए नीलकमल की उपमा दी गई है। दो चार उदाहरण और देख सकते हैं-

(क) श्याम तामरस दाम शरं।
जट मुकुट परिधन मुनिचीरं॥

-मानस- ३. १०. ३.

(ख) कुन्देन्दीवर सुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाद्वयौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।

-मानस- ४. श्लोक. १.

(ग) नीलोत्पल तन स्याम कामकोटि सोभा अधिक।
सुनि अतासु गुनग्राम जासु नाम अध खग बधिक॥

-मानस- ६. ५५. ६.

(घ) नील कंज तनु सुंदर स्यामा।
हृदयँ राखु लोचनाभिरामा॥

-मानस- ६. ५५. ६.

इस प्रकार रामचरितमानस के अतिरिक्त गीतावली, कवितावली, विनय-पत्रिका, बरवै रामायण आदि ग्रन्थों में भी सैकड़ों-हजारों उदाहरण मिलेंगे, जिनमें नील कमल की छवि से श्रीराम की शरीर-कान्ति को उपमित किया गया है। महाकवि तुलसी के राम सौन्दर्य-सुधा-सागर के सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं। अतएव वे जब-जब श्रीराम को निहारते हैं, तब-तब उस सौन्दर्य में एक नयापन ही दिखलाई पड़ता है। उनके राम के अद्वितीय सौन्दर्य में नित नई छवि, नित नई शोभा, नित नई आभा दिखाई पड़ती है। इस नई आभा से युक्त श्रीराम की शरीर-कान्ति को देखना ही गोस्वामीजी की सौन्दर्य-दृष्टि का वैशिष्ट्य है। श्रेष्ठ कवि रस तथा भाव का विमर्शक होता है। आचार्य मम्मट की दृष्टि में काव्य लोकोत्तर वर्णन में निपुण कवि

का कर्म होता है- लोकोत्तरवर्णनानिपुण-कवि कर्म। यदि कवि के वर्णन में लोकोत्तरता नहीं है, तो वह सामान्य कवि की कोटि में आता है। महाकवि तुलसीदास कालजयी एवं क्रान्तदर्शी कवि हैं। इसीलिए उन्होंने श्रीराम की शरीर-कान्ति के वर्णन में लोकोत्तरता का परिचय दिया है, आन्तरिकता का परिचय दिया है।

(२) तमाल- गोस्वामीजी श्रीराम की शरीर-छवि के अंकन के लिए तमाल वृक्ष को भी उपस्थित करते हैं। तमालवृक्ष दृढ़ता एवं घनी छाया और विशालता का प्रतीक है। उस पर लताएँ आश्रय पाकर फैलती हैं। तमालवृक्ष सुदृढ़ आश्रय और छाया प्रदान करता है। भगवान् राम अपने जनों एवं भक्तों को दृढ़ आश्रय प्रदान करते हैं। उनके आश्रय में भक्तजन निश्चिन्त होकर निवास करते हैं। निषाद रामानुज श्रीभरतजी से कहता है-

कपटी कायर कुमति कुजाती।
लोक बेद बाहेर सब भाँति।।
राम कीन्ह आपन जबही तें।
भयदउँ भुवन भूषन तबही तें।।

-मानस- २. १६५. १, २.

अतएव गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् राम की शरीर-कान्ति के वर्णन में तमाल वृक्ष को उपस्थित करते हैं। सूरदासजी ने भी अपने एक पद में भगवान् कृष्ण को तमाल वृक्ष और गोपियों को उस पर छायी लताओं के रूप में चित्रित किया है। वहाँ न आँधी का भय है और न नष्ट होने का डर है। गोस्वामीजी कहना चाहते हैं कि जो भक्त श्रीराम की इस शरीर-छवि का ध्यान करेगा, उसे संसार का और कलयुग का भय नहीं होगा। इसीलिए श्रीरामचरित मानस में कई स्थलों पर भगवान् राम की उस अद्वितीय छवि के लिए तमाल वृक्ष को लाया गया है। दो-चार उदाहरण हम देखें-

(क) अरुन नयर उर बाहु बिसाला।
नील जलज तनु स्याम तमाला।

-मानस- १. १०८. १.

प्रसंग बालकाण्ड का है और विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण ताड़कादि राक्षसों को मारने हेतु जा रहे हैं। अतः तमालवृक्ष तथा नील कमल से उनकी तुलना की गई है।

(ख) तरुन तमाल बरन तनु सोहा।
देखत कोटि मदन मनु मोहा।

-मानस- २. ११४. ६.

यहाँ भी तमाल वर्ण वाले श्रीराम के शरीर की शोभा के समक्ष करोड़ों कामदेवों का मन मोहित हो जाता है। वन-मार्ग का यह दृश्य हमारे मन में आश्वासन देता है कि माया-मोह से छूटने की प्रक्रिया यह है कि हम अपने आश्रय-दाता का स्मरण करें और इस सृष्टि में एकमात्र भगवान् ही हमारे आश्रय हैं, शरण हैं।

(ग) मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला।
कनक तरुहि जनु भेंट तमाला।।

-मानस- ३. ६. १३.

वन में सुतीक्ष्णजी का श्रीराम से मिलने का पावन प्रसंग है। सुतीक्ष्णजी स्वर्ण के समान हैं और रामजी तमालवृक्ष की भाँति श्याम और सुदृढ़ हैं। दोनों का मिलन स्वर्णवृक्ष एवं तमालवृक्ष के मिलन सुदृढ़ता एवं सुडौलता को बिम्बित करने के लिए ही तमाल वृक्ष की भाँति श्याम और सुदृढ़ हैं। दोनों का मिलन स्वर्णवृक्ष एवं तमालवृक्ष के मिलन सदृश है। यहाँ श्रीराम की श्यामछवि की सुदृढ़ता एवं सुडौलता को बिम्बित करने के लिए ही तमालवृक्ष का उपमान उपस्थित किया गया है।

(घ) लंकाकाण्ड में रणभूमि का एक दृश्य देखें-

भुजदंड सर कोदंडफेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु राय मुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने।।

-मानस- ६. १०२. छन्द २.

समरांगण में आततायी रावण को मारने के पश्चात् श्रीराम की शोभा का यह वर्णन है। भुजदंडों से श्रीराम धनुष और बाण घुमा रहे हैं। रक्त की बूँदों के छींटे उनके शरीर पर ऐसे अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं, मानों तमालवृक्ष पर बहुत-सुन्दर हैं, मानों तमालवृक्ष पर बहुत-सी लालमुनियाँ अपने विपुल सुख में बैठी हों। नील तमालवर्ण शरीर पर उड़े हुए रक्त की बूँदों के लाल-लाल छींटे हैं। रक्त की बूँदों के साथ शरीर की शोभा कैसी है, इसी को उत्प्रेक्षा अलंकार एवं बिंबविधान के माध्यम से गोस्वामीजी ने व्यक्त किया है। गीतावली, कवितावली, विनय-पत्रिका आदि ग्रन्थों में भी महाकवि तुलसी ने श्रीराम की शरीर-कान्ति की उपमा तमाल वृक्ष से दी है। निबंध के छोटे कलेवर में उनका वर्णन नहीं किया जा रहा है। भगवान् राम के विराट् एवं उदार व्यक्तित्व एवं सुदृढ़ तथा सुडौल शरीर के लिए तमाल वृक्ष का प्रतीक बड़ा सार्थक और समीचीन है।

(३) **मेघ-** मेघ से भगवान् राम की शरीर-छवि को उपमित करना उनके उदार व्यक्तित्व को दर्शाना है। मेघ उदार है, दानी है। वह अपने जल से धरती को जीवन देता है। ताप को मिटाता है। पृथ्वी के निवासियों के लिए वह प्राणाधार है। जड़ और चेतन सभी नीरधर मेघ से ही जीवन पाते हैं। जल का एक अर्थ जीवन भी होता है। अतः मेघ जीवनदाता भी है। भगवान् राम भी समस्त सृष्टि के आधार हैं। उनका व्यक्तित्व महान् है, उदार है और विराट् भी। वे 'कृपा-वारिधर' हैं। अपनी कृपा-दृष्टि से जड़-चेतन सबको आप्लावित एवं संजीवित करते हैं। भक्त चातक बनकर उनकी कृपा-वृष्टि की याचना करते हैं। मेघ से श्रीराम की शरीर-कान्ति को उपमित करने का एक और उद्देश्य है। मेघ अमानी दानी

है। उसे अपने दातापन का गर्व नहीं होता। वह मौज में आकर बरसता है और पृथ्वी को रस-प्लावित करता है। जलदान में वह पक्षपात नहीं करता। उर्वर और ऊसर में, समतल एवं दलदल में, नदी और ताल में, समुद्र तथा जंगल में, पर्वत और धरती में अन्तर नहीं करता। वह समदर्शी है। अपने वारि को सबको सुलभ करता है। भगवान् राम भी उदार हैं, महादानी हैं, कृपा निधान हैं, करुण-निधान हैं। मनु-शतरूपा के तप से प्रसन्न होकर श्रीराम कहते हैं-

बोले कृपानिधान मुनि अतिप्रसन्न मोहिजानि।
मागहु बर जोड़ भाव मन महादानि अनुमानि।

-मानस- १. १४८.

ऐसो को उदार जग माहीं ।
बिनु सेवा जो द्रवे दीन पै रामसरिस कोउ नाहीं।

-विनय-पत्रिका- १६२.

इस प्रकार सरसता, उदारता, सहृदयता, अकारण वरण करने की दृष्टि से श्रीराम की शरीर-कान्ति की उपमा नील नीरधर से देना बड़ा ही सार्थक, समीचीन और साभिप्राय है। श्रीराम का अवतार इस धराधाम पर उस समय होता है जब राक्षसराज रावण के अत्याचार-अनाचार से धरती, धरती के जन, मुनि, देव सभी सन्तप्त और पीड़ित थे। भगवान् राम के अवतार लेते ही ऐसा लगा कि ग्रीष्म के प्रचंड ताप से झुलसती हुई धरती पर नील मेघ उमड़ आया हो और वर्षा की नई आशा से पृथ्वी के प्राणियों एवं पदार्थों में उमंग, उत्साह और उल्लास की लहरें दौड़ गयी हों। इसीलिए श्रीराम के अवतरण के समय गोस्वामीजी उनकी जिस अद्वितीय छवि का वर्णन करते हैं, उसमें श्याम घन, नीले मेघ को ही उपमान के रूप में चुनते हैं-

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषण बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

-मानस- १.१६१.छन्द

अत्याचारी-अनाचारी और आतंकवादी दुर्घर्ष रावण का अत्याचार ग्रीष्म का प्रचंड ताप बनकर सबको जला रहा था। श्रीराम घनश्याम की बड़ी आतुरता और आकुलता से प्रतीक्षा थी। वे आए और धरती निहाल हो उठी। माँ कौशल्या तथा मातृभूमि-भारतभूमि हर्षित हो उठीं- 'हरषित महतारी'। आखिर कौशल्या हैं क्या? मानसजी के वन्दना-प्रसंग में गोस्वामीजी ने कौशल्या को 'प्राची दिशा' का प्रतीक माना है-

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची।

कीरति जासु सकल जग माची॥

प्रगटेउ जहँ रघुपति ससिचारु।

बिस्व सुखद खल कमल तुसारु॥

-मानस- १.१५.४,५.

भारत प्राची दिशा में ही पड़ता है, जिसकी यशः पताका सारे संसार में सृष्टि के प्रारंभ से ही लहराती-फहराती आ रही है। इसी महीयसी भारत भूमि के पावन अवध-धाम में माता कौशल्या के समक्ष भगवान् श्रीराम का अवतार हुआ। अतः कौशल्या और भारत भूमि दोनों का निहाल होना स्वाभाविक था।

श्रीरामचरितमानस के विविध प्रसंगों में गोस्वामीजी ने श्रीराम की शरीर-कान्ति के लिए मेघ का उपमान प्रस्तुत किया है। यहाँ दो-चार उदाहरणों की झाँकी ही दिखाई जायेगी, क्योंकि पत्रिका के लिए निबन्ध का अधिक लंबा होना ठीक नहीं है।

(क) प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छवि पावा।

भूषित उड़गन तड़ित धनु जनुबर बरहि नचावा॥

-मानस- १.१३६.

जनकपुर में श्रीराम के विवाह का शुभ अवसर है। रामजी घोड़ा पर चढ़कर उसे नचा रहे

हैं। वह घोड़ा कामदेव ही था। दूलह वंश में रामजी के मन के साथ अपना मन मिलाकर वह अश्व दौड़ता हुआ ऐसा लग रहा था जैसे तारों तथा बिजली से सजा हुआ बादल किसी सुन्दर मोर (मयूर) को नचाये जा रहा है। यहाँ श्रीराम मेघ हैं, अश्व (बाजि) मयूर है, श्रीराम के आभूषण तारे हैं और उनका पीताम्बर बिजली है। गोस्वामीजी की यह रंग-योजना देखने योग्य है। महाकवि तुलसी की इस एक ही कल्पना पर हजारों कवियों की कल्पनाएँ न्योछावर हैं। भाव-सामग्री का ऐसा संचयन एवं संयोजन अन्यत्र बड़ी कठिनता से मिल सकता है। मेघ को देखकर मोर का नाचना-थिरकना स्वाभाविक है। गोस्वामीजी की कविताओं में रंग-योजना का यही वैशिष्ट्य सर्वत्र देखने को मिलता है। उत्प्रेक्षा अलंकार के साथ यह बिम्ब-विधान अपने आप में बेजोड़ है। यहाँ ऐन्द्रिय बिम्ब तथा मानस बिम्ब दोनों का आनन्द उठाया जा सकता है। श्रेष्ठ कवि का काव्य सदैव अप्रस्तुत वस्तुओं का कल्पनागत वर्णन प्रस्तुत करता है। अतः काव्य के अन्तर्गत रूपसृष्टि इसी बिम्बयोजना की क्रिया है। इस क्षेत्र में गोस्वामीजी अद्वितीय हैं।

(ख) मानस के तृतीय सोपान अरण्यकाण्ड के मंगलाचरण संख्या दो में गोस्वामीजी ने पथिक वेशधारी भगवान् राम की वन्दना करते हुए उनकी शरीर-छवि के अंकन के लिए जल भरे मेघ को ही चुना है-

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं

पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्॥

यहाँ श्रीराम के शरीर को आनन्द के जल से भरे हुए घने मेघ के समान सुन्दर और सुहावना माना गया है। मेघ जब जल से भरा हुआ होता है, तब वह बड़ा सुन्दर एवं सुहावना लगता है। भगवान् श्रीराम का सुहावना शरीर भी ऐसा ही आनन्द दायक है। उनका भुवन-मोहन सौन्दर्य है।

इसलिए यहाँ 'सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं' कहा गया है।

(ग) अरण्यकाण्ड में ही शरभंग मुनि के प्रसंग में भगवान् राम की शरीर-कान्ति को उपमित करने के लिए नील जलद को चुना गया है-
सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
ममहियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥

-मानस-३.८.

(घ) लंकाकाण्ड में कुंभकर्ण के आक्रमण के समय बन्दरों एवं भालुओं ने भगवान् राम को 'कृपावारिधर' कहकर अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की-

“कृपा बारिधर राम खरारी।
पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥

-मानस-६.६६.४.

कुंभकर्ण अकाल (दुर्भिक्ष) है। अकाल या सूखा किसी देश पर ही पड़ता है। वानर कुल एवं भालू कुलही देश हैं। कुंभकर्ण अकाल है। कुंभकर्ण रूपी अकाल के बानारूपी देश पर टूट पड़ने से पूरा बन्दर रूपी देश मरेगा। अतएव यहाँ भगवान् श्रीराम को 'कृपावारिधर' कहना बड़ा साभिप्राय है। जलधर जल की वर्षा कर अन्न उपजाते हैं, जिससे अकाल दूर होता है। फिर जीवन लहलहाता है। अतः महाकवि तुलसी ने यहाँ श्रीराम को जलधर कहा है। उनकी कृपा-दृष्टि से ही संसार के विषम ताप से झुलसा हुआ मानव-प्राणी शीतलता और सरसता का अनुभव कर सकेगा।

(ङ) लंकाकाण्ड के अन्त में भी पुष्पक विमान पर आरुढ़ श्रीराम-सीता की अद्वितीय छवि के अंकन में गोस्वामीजी ने घन-दामिनी के रूप में श्रीसीता-राम को बिंबित किया है-

राजत रामु सहित भामिनी।
मेरु सृंग जनु घन दामिनी॥

-मानस-६.११.८.

यहाँ विमान सुमेरुपर्वत है, वह रत्नजटित स्वर्ण-सिंहासन उसका शिखर है। उस पर बैठे हुए श्याम मेघ श्रीराम हैं और उस मेघ में दामिनी, बिजली भामिनी श्रीसीताजी हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार के माध्यम से श्रीसीताराम के शरीर की यह छवि देखते बनती है।

(४) मरकतमणि- मरकत पन्ना करे कहते हैं। यह हरे रंग का रत्न है। इसकी आभा देखने योग्य होती है। यह तोते (सुग्गे) के पंख के समान हरा स्निग्ध और शोभादायक होता है। भगवान् श्रीराम के शरीर के सौन्दर्य की अद्वितीय आभा को दिखलाने के लिए ही गोस्वामी तुलसीदास ने मरकतमणि को उपमान के रूप में चुना है। मरकत बहुमूल्य रत्न है और यह मनुष्य की ग्रहदशा को मिटाता है। बुध की ग्रहदशा होने पर इसे धारण किया जाता है। इसकी बहुमूल्यता और अद्वितीय आभा के चलते ही श्रीराम की शरीर-कान्ति से उपमित किया जाता है। भगवान् श्रीराम भी अद्वितीय, अपूर्व एवं अप्रतिम हैं। 'राम समान प्रभु नहीं कहूँ' तथा 'निरूपम न उपमा आन राम समान रामु निगमक है, कहकर गोस्वामीजी ने श्रीराम की अद्वितीयता का वर्णन किया है। श्रीराम की भक्ति ही असली धन है। एकमात्र ईश्वर ही जीव की परम सम्पत्ति है और वही जीव को संसार की ग्रह-दशा से मुक्त करता है। इसीलिए जहाँ भी श्रीराम की अद्वितीय छवि और उस सौन्दर्य की बहुमूल्यता को दिखाने की आवश्यकता अनुभूत हुई है, वहाँ उन्होंने मरकत मणि को उपमान के रूप में चुना है। यह महाकवि तुलसी की बहुज्ञता का प्रमाण है। श्रेष्ठ कवि को बहुज्ञ होना ही चाहिए। गोस्वामीजी को संसार का जितनी अनुभव है, उतना बहुत कम कवियों को है। आइये, हम देखने का प्रयास करें कि श्रीरामचरितमानस में गोस्वामीजी ने किस प्रकार

श्रीराम की शरीर-कान्ति के लिए मरकत मणि का उपमान दिया है।

(क) नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम में हम पहले ही देख चुके हैं कि महाकवि को जब एक उपमा से तृप्ति नहीं होती तब वह एक ही साथ तीन-तीन उपमाओं को उपस्थित करते हैं। नील कमल, नील मणि (मरकत मणि) एवं नील नीरधर ये तीनों एक ही साथ प्रयुक्त हैं।

(ख) मरकत कनक बरन बरजोरी।

देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी।

-मानस- १.३१४.७

यहाँ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न दूल्हा रूप में एक साथ जा रहे हैं। देवता इनकी अद्वितीय छवि पर मुग्ध हैं। श्रीराम और श्रीभरत एक समान साँवले हैं तथा श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्न एक समान गोरे हैं। इनकी साँवले श्रेष्ठ जोड़ी मानों मरकत एवं स्वर्ण की जोड़ी है।

(ग) वनमार्ग में जाते हुए श्रीराम, श्रीलक्ष्मण और श्रीसीता के सौन्दर्य की अद्वितीयता से सभी ग्रामवासी नर-नारी, बालक-वृद्ध मुग्ध हैं। ग्राम-नारियाँ सीताजी से श्रीराम एवं श्रीलक्ष्मण का परिचय पूछती हैं। वे इस समय श्रीराम एवं श्रीलक्ष्मण के सौन्दर्य का उल्लेख करती हुई कहती हैं-

राजकुअँर दोउ सहज सलोने।

इन्ह तें लही दुति मरकत सोने॥

-मानस- २.११६.८

यहाँ श्रीराम के नीले शरीर को मरकत से और श्रीलक्ष्मण के गोरे शरीर को स्वर्ण से उपमित किया गया है।

(घ) युद्धभूमि में भी श्रीराम का शरीर-सौन्दर्य अद्वितीय आभा से युक्त रहता है। खर-दूषण के साथ युद्ध में भगवान् राम की अद्वितीय शरीर-छवि मरकत शैल के समान शोभा पा रही है-

कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥

-मानस- ३.१७.छंद

कठिन धनुष चढ़ाकर सिर पर जटाओं का जूड़ा बाँधते हुए रामजी कैसे शोभित हो रहे हैं जैसे नीलम के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो सर्पलड़ रहे हैं। श्रीराम का शरीर ही मरकतमणि का शैल है। जटाएँ करोड़ों बिजलियाँ हैं और दोनों साँवले हाथ दो सर्प हैं।

(ङ) उत्तरकाण्ड में भी काकभुशुंडिजी श्रीराम की श्याम छवि के वर्णन में मरकत को रखते हैं-

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा।

अंग अंग प्रति छवि बहु कामा।

-मानस- ७.७६.६

(५) मयूर कंठ- श्रीरामचरितमानस में भगवान् राम की छवि एवं शरीर-कान्ति के लिए मयूरकंठ से दो स्थलों पर उपमाएँ दी गई हैं। एक दूल्हा वेश में जब श्रीराम अश्व पर सवार हैं और जानकीजी से विवाह हेतु जा रहे हैं। दूसरे उस समय जब आतताई राक्षराज रावण को मारकर अयोध्या आते समय भरतजी से मिलने हेतु पुष्पक विमान पर आरूढ़ हैं। ये दोनों उपमाएँ बड़ी सार्थक एवं समीचीन हैं। दोनों ही स्थलों पर श्रीराम मिलने के लिए आतुर हैं। दूल्हा रूप में श्रीसीताजी से और लंका से अयोध्या आते समय श्रीभरतजी एवं श्रीभरतजी में भक्ति, प्रेम एवं समर्पण की दृष्टि से बड़ा साम्य है। दोनों श्रीरामचन्द्र के सबसे प्रिय पात्र हैं। अतएव इनदोनों पर एक ही प्रकार की उपमा दी गई है। दोनों उपमाओं का आनन्द लें-

(क) केकि कंठदुति स्यामल अंगा।

तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा॥

-मानस- १.३१६.१

(ख)

केकीकण्ठाभनीलं सुख विलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं
शोभाद्यं पीतवस्त्रं सरिसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नम्।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं बन्धुना सेव्यमानं
नौमीड्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामम्॥

-मानस-७,श्लोक।

इन दोनों ही स्थलों पर श्रीराम गतिशील हैं। जनकपुर में अश्वगतिशील हैं और लंका से श्रीअवध के लिए प्रस्थान करते हुए पुष्पक विमान भी गतिशील है। जनकपुर के मार्ग में अश्व को भी 'बर बरहि' श्रेष्ठ मयूर कहा गया है और पुष्पक विमान भी मयूर के आकार का है। घोड़ा भी द्रुत गति से जा रहा है और पुष्पक विमान भी। अतः यहाँ कमल, मेघ, तमाल मरकतमणि की उपमा नहीं दी गई है। मयूर जब नृत्य करता है, तब उसकी गति देखते बनती है। इसलिए यहाँ मयूर के कंठ से उमपा दी गई है।

अश्व, विमान एवं मयूर में एक और साम्य है। अश्व बहुत ऊँचा नहीं होता। मयूर भी बहुत ऊँचा नहीं होता। पुष्पक विमान भी बहुत ऊँचा नहीं उड़ रहा था। अतएव उड़ान की दृष्टि से भी इन दो स्थलों पर केकीकंठ (मयूरकंठ) से उपमा दी गई है।

मयूर सर्पभक्षक है। सर्प काल का प्रतीक है। भगवान् श्रीराम भी काल को अपना अस्त्र बनाकर रखते हैं-

लव निमेष परमानु जुग बाष कलप सर चंड।
भजसिन न मन तेहि राम को कालु जासु को दंड॥

-मानस- लंकाकाण्ड श्लोक के बाद का दोहा।

साथ ही मयूर बड़े-बड़े विषधरों का मद उतार देता है। उसकी ग्रीवा उन्नत है और आकाश की ओर उठी रहती है। भगवान् श्रीराम भी ऐसे ही हैं। धनुष-यज्ञ में बड़े-बड़े राजाओं का दंभ

तोड़कर तथा उनका मद उतार कर सीताजी से विवाह हेतु जा रहे हैं। उसी प्रकार लंका में रावण तथा कुंभकर्ण का मद चूर कर अपने प्रेमास्पद भरत से मिलने जा रहे हैं। अतः मयूर कंठ से उपमा देना बड़ा सार्थक और समीचीन है।

गोस्वामी तुलसीदासजी श्रीराम के अनन्य भक्त हैं। वे श्रीराम के अनिंध एवं अद्वितीय सौन्दर्य पर मुग्ध रहनेवाले कालजयी कवि हैं। श्रीराम की शरीर-कान्ति को उपमित करने के लिए उन्हें किसी एक उपमान से तृप्ति नहीं मिलती। उनके प्रिय उपमान कमल, मेघ और मणि हैं। पर इन दो स्थलों पर श्रीराम की अप्रतिम छवि के लिए वे मयूर कंठ को हिलाते हैं। सीताजी एवं भरतजी रामचरितमानस के दो अनुपमेय पात्र हैं। माता वैदेही को लंका का अतुलनीय स्वर्ण-वैभव आकर्षण-पाश में नहीं बाँध पाता और प्रेममूर्ति भरत को अयोध्या का अतुलनीय वैभव नहीं बाँध पाता। ये दोनों भक्ति के मानदण्ड एवं मापदण्ड हैं। मयूर का पंख भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण दोनों अपने मुकुट में लगाये रहते हैं। समदर्शी होकर भी भक्तों के प्रति भगवान् का पक्षताप है। मयूर को भक्ति भावना का श्रेष्ठ प्रतीक भी माना जाता है। अतएव गोस्वामीजी का श्रीराम की अद्वितीय श्याम छवि के लिए इन दो स्थलों पर मयूर कंठ से उपमित करना बड़ा स्वाभाविक और साभिप्राय है।

मानस में श्रीराम के शरीर की श्याम छवि के लिए जिन छह उपमानों को लिया गया है, उनमें पाँच जड़ हैं- कमल, मेघ, मणि, तमाल और यमुना का जल। केवल मयूर ही चेतन है। इन पाँचों वस्तुओं को देखकर दूसरों को ही

आनन्द आता है। उन्हें कोई आनन्द नहीं आता। किन्तु मयूर ऐसा है जो दूसरों को भी आनन्द देता है। श्रीराम अपने प्रिय भक्तों एवं सन्तों को देखकर स्वयं आनन्दित होते हैं और अपने प्रियतम भगवान् श्रीराम को देखकर भक्तों को भी अपार सुख तथा आनन्द आता है। अतः इन दो स्थलों पर चेतन मयूर के कंठ से श्रीराम के शरीर की कान्ति की उपमा देना समीचीन है।

(६) यमुना- श्रीरामचरित मानस में दो ही स्थलों पर श्रीराम की शरीर-छवि की उपमा यमुना नदी के श्याम जल से दी गई है। यमुना सूर्य की बेटी हैं और श्रीराम भी सूर्यवंश में अवतरित हैं। यमुना का जल भी श्याम और श्रीराम भी श्याम रंग के हैं। यमुना भी सबको तारती हैं और भगवान् राम भी सबको तारते हैं। यमुना गंगा में मिलती हैं। गंगा भक्ति हैं- 'राम भक्ति जहाँ सुरसरि धारा।' भक्ति और भगवान् का अन्योन्याश्रित संबंध है। यमुना कर्म हैं। कर्म भक्ति से मिलकर ज्ञान के साथ रहता है। सत्कर्म एवं भक्ति ज्ञान के साथ मिलकर तीर्थराज प्रयाग बनाते हैं। भक्त और भगवान् का मिलन बड़ा पुण्यमय होता है। भक्त, भगवान् एवं भक्ति; ध्याता, ध्येय और ध्यान तीनों मिलकर तीर्थराज बन जाती हैं।

यमुना का नाम कृष्णा, कालिन्दी, कालिन्दजा, तरणिजा, यमी, भानुजा आदि है। भागवत पुराण में यमुना को श्रीकृष्ण की पत्नी एवं भक्ति का प्रतीक माना गया है। श्रीराम की शरीर-कान्ति और यमुना के जल से अदभुत साम्य बैठता है। अतएव यमुना-जल से श्रीराम के शरीर को उपमित करना बड़ा स्वाभाविक है। देखें कहाँ-कहाँ यमुना-जल से श्रीराम-छवि का अंकन है और गोस्वामीजी उसको किस रूप में देखते हैं।

(क) तडित् बिनिंदक पीत पट उदर रेख बर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु जमुन भवँर छवि छीनि॥

-मानस- १. १४७.

भगवान् राम का पीताम्बर बिजली की चमक को भी निंदित कर रहा था। उनके उदर पर बड़ी सुन्दर तीन रेखाएँ (त्रिबली) झलक रही थीं। उनकी नाभि तो ऐसी शोभा बिखेर रही थी मानो यमुना के जल में पड़ी हुई भँवर की शोभा को भी छीन रही है। यहाँ श्रीराम का शरीर यमुना है और नाभि भँवर हैं यहाँ प्रतीप अलंकार है। उपमान को उपमेय से हीन दिखाना प्रतीप अलंकार है।

(ख) बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥

-मानस- २. १०६.

ब्रह्मचारियों को विदा करके श्रीरामजी ने यमुना नदी को पार कर यमुना में स्नान किया। यमुना का जल उनके श्याम शरीर के साथ ही श्याम है। यहाँ भी प्रतीप अलंकार है यहाँ उपमान उपमेय के ही समान है। अतएव प्रतीप अलंकार ही है।

उपर्युक्त दोनों स्थलों पर दोहों में ही प्रतीप अलंकार के माध्यम से श्रीराम की शरीर-कान्ति का वर्णन है। इस प्रकार रामचरितमानस में भगवान् राघवेन्द्र श्रीरामभद्र की शरीर-छवि एवं उनकी कान्ति का विशद विवेचन हुआ है। इस विषय पर एक बृहद् शोध-ग्रन्थ लिखा जा सकता है। किन्तु पत्रिका के कलेवर को देखकर इसी संक्षिप्त विवेचन से सन्तोष करना पड़ता है।

ऋतंभरा, शान्तिपुरी
पो. मोतीहारी, पूर्वी चम्पारण।



bb

डाक टिकटों में भारतीय संस्कृति

○ आचार्य चन्द्र किशोर पाराशर

bb

डाक टिकट जैसे तो कागज का एक छोटा-सा रंगीन टुकड़ा मात्र दिखाई पड़ता है। परन्तु अपनी विविधतापूर्ण विशेषताओं के कारण यह उस देश का चलता-फिरता सांस्कृतिक दूत भी माना जाता है जहाँ से वह प्रकाशित होता है। शायद इसी कारण डाक टिकट न केवल

डाक भेजने के शुल्क के विकल्प के रूप में प्रयोग किया जा रहा है अपितु उस पर मुहर लग जाने के उपरान्त उसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है तथा डाक टिकट संग्रहकर्ताओं द्वारा इसे संग्रहित कर एक लोकप्रिय शौक के रूप में अपना लिया जाता है; जिसे 'फिलैटली' के नाम से जाना जाता है।

विश्व का शायद एक भी ऐसा रचनात्मक विषय नहीं है जिस पर डाक टिकट प्रकाशित न हुआ हो। यथा- धर्म, संस्कृति, कला, साहित्य, ज्ञान-विज्ञान, राजनीति, पत्रकारिता, पुरातत्त्व, व्यक्तित्व आदि-आदि। इन्हीं विषयों में से एक विषय है भारत की सत्य सनातन संस्कृति, अर्थात् 'हिन्दु-संस्कृति।' भारत के आधुनिक डाक सेवा के लगभग डेढ़ सौ वर्षों की कालावधि में हिन्दू देवी-देवताओं और सांस्कृतिक पुरुषों एवं प्रतीकों पर परतन्त्र भारत में तो कोई डाक-टिकट

नहीं ही जारी किया गया। यह घोर आश्चर्य का विषय है स्वतन्त्र भारत में भी हमारी विश्व विख्यात हिन्दू संस्कृति की झलक प्रस्तुत करनेवाला डाक टिकट भारत सरकार द्वारा बहुत देर से निकाला गया। साथ ही यह एक सुखद आश्चर्य का विषय है कि भारत के अतिरिक्त विश्व के अनेक देशों ने भी

ऐसे डाक-टिकट प्रकाशित किए जिसमें हिन्दू देवी-देवताओं और भारतीय संस्कृति का दिग्दर्शन होता है।

विदेशी डाक टिकटों में हिन्दुत्व

हिन्दू देवी-देवताओं तथा भारतीय संस्कृति की विश्वव्यापी देशों के साथ-साथ अनेक इस्लामी,

ईसाई, बौद्ध देशों ने भी पिछले लगभग पाँच दशकों से हिन्दुत्व से जुड़े विषय-वस्तु पर अच्छी संख्या में डाक टिकट प्रकाशित किया है। हिन्दू देवी-देवताओं पर सर्वप्रथम लाओस में सन् १९५५ में डाक-टिकटों का एक सेट जारी हुआ जिस पर रामायण के पात्र क्रमशः राम, सीता, हनुमान्, जामवन्त तथा रावण का चित्र प्रकाशित किया गया। सन् १९६२ में 'मारवा बौस उत्सव' के विशेष अवसर पर भी हनुमानजी के चित्र वाले

भारतीय संस्कृति की व्यापकता, कोमलता, उदारता एवं सदाशयता का व्यापक प्रभाव देखते हुए हम गौरव से भर जाते हैं। भारत में ही विदेश में भी इस संस्कृति के प्रति आदर की भावना का सुन्दर प्रमाण है कि वहाँ के डाक टिकटों में भारतीय संस्कृति की झलक हमें देखने को मिलती है।

डाक टिकट के साथ-साथ-भारतीय संस्कृति की छवि प्रस्तुत करनेवाली अन्य टिकटों का एक सेट प्रकाशित किया गया। कम्बोडिया से सन् १९६४ में हनुमानजी के चित्र वाला एक डाक टिकट जारी किया गया। इससे पूर्व सन् १९६२ में मुस्लिम बहुल देश इण्डोनेशिया में रामायण नृत्य को केन्द्रीय विषय बना कर डाक टिकटों की एक शृंखला प्रकाशित की गयी, जिसमें जटायु, हनुमान, सीता, राम और रावण को दर्शाया गया था।

बौद्ध मताबलम्बी देश थाईलैण्ड ने सन् १९६६ में 'धनदेवी' (लक्ष्मी) के चित्र से सुसज्जित एक डाक टिकट प्रकाशित किया जो हिन्दुओं की प्रमुख देवी हैं तथा समृद्धि की प्रदाता मानी जाती हैं। इस्लामी देश 'यमन' ने सन् १९६७ में एक आकर्षक डाक टिकट प्रकाशित किया जिसमें पंचवटी से राम, लक्ष्मण और सीता को दर्शाया गया था। इसी वर्ष एक अन्य मुस्लिम देश 'अजमन' ने भी राधा और कृष्ण के आकर्षक चित्रों वाला डाक टिकट जारी किया। गुयाना (दक्षिण अफ्रिका) ने सन् १९६६ में 'फगवाह महोत्सव' के विशेष अवसर डाक टिकटों का एक सेट प्रकाशित किया, जिसमें से एक टिकट में कृष्ण को राधा और गोपियों ने साथ होली खेलते हुए तथा दूसरे में कृष्ण को राधा पर पिचकारी से रंग डालते हुए दर्शाया गया था।



इसी प्रकार बौद्ध मत को अपना राजधर्म माननेवाले देश जापान ने भी सर्वप्रथम सन् १९६८ में ही हिन्दू संस्कृति को दर्शानेवाला एक डाक टिकट प्रकाशित किया जिसमें योगीराज श्रीकृष्ण को वंशी बजाते हुए दिखाया गया है। लम्बे समय तक संवैधानिक मान्यता प्राप्त विश्व के एकमात्र हिन्दू राष्ट्र (अब नहीं) नेपाल ने तो शिव, विष्णु आदि सहित अनेक हिन्दू देवी-देवताओं तथा मन्दिरों पर भी हुलाक टिकट (डाक टिकट) प्रकाशित किया। साथ ही नेपाल में महाशिवरात्रि, कृष्णाष्टमी, रामनवमी आदि हिन्दू उत्सवों के अवसर पर भी विशेष डाक टिकट जारी करने का परम्परा थी।

कुछ देशों ने हिन्दू-देवताओं पर तो कोई डाक टिकट नहीं जारी किया; परन्तु भारतीय संस्कृति को दर्शाने वाले नृत्य आदि विषयों को डाक टिकट पर स्थान देकर उसके प्रति रूझान एवं भारत के प्रति अपनी आत्मीयता को समय-समय पर दर्शाया है। ऐसे देशों में प्रमुख हैं- श्रीलंका, फ्रांस, फिजी, मॉरिशस, सिंगापुर आदि।

स्वदेशी डाक टिकटों में भारतीयता

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जब स्वदेशी सरकार ने सत्ता की बागडोर थामी तो भारतीय डाक विभाग द्वारा हिन्दू-देवताओं और भारतीय डाक विभाग द्वारा हिन्दू देवी-देवताओं और संस्कृति की झलक प्रस्तुत करनेवाले डाक टिकटों के प्रकाशन का सिलसिला शुरू हुआ सन् १९४८ में। इस वर्ष डाक विभाग ने भारतीय संस्कृति को प्रतिबिम्बित करने वाले एक दर्शन डाक टिकटों को स्वाधीनता की दूसरी वर्ष गाँठ के अवसर पर १५ अगस्त १९४८ को जारी किया। इन टिकटों पर त्रिमूर्ति, बोधिसत्व, नटराज के चित्रों के साथ-साथ महादेव मन्दिर, जैन शत्रुंजय मन्दिर, स्वर्ण मन्दिर, कोणार्क मन्दिर का अंश, साँची स्तूप का प्रवेश द्वार, अजन्ता तथा बोधगया के ऐतिहासिक स्थलों को चित्रित किया गया था। सन् १९५१ में पुनः बोधगया मन्दिर तथा बोधिसत्व पर डाक टिकट प्रकाशित किया गया। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के २५५० वर्ष पूरा होने के उपलक्ष्य में एक विभाग ने जनवरी २००७ में पटना में एक विशेष आवरण भी प्रकाशित किया जिस पर बोधगया मन्दिर के साथ भगवान् बुद्ध की दो प्रतिमाओं का चित्र है तथा इस पर विरूपण में वैशाली में प्राप्त भगवान् बुद्ध के अस्थिकलश को रेखांकित किया गया है। इससे पूर्व १४ नवम्बर, २००६ को बाल दिवस के अवसर पर दो डाक टिकटों का सेट



भारतीय डाक विभाग ने मिनिएचर सीट के साथ निकला। बच्चों की पेंटिंग को डाक टिकटों में स्थान देने के उद्देश्य से प्रकाशित बाल दिवस के इन टिकटों पर क्रमशः भगवान् श्रीकृष्ण को कालिया नाग के फन पर बाँसुरी बजाते हुए तथा दूसरे में भगवान् श्रीराम को बाण का संधान करते हुए चित्रांकित किया गया है।



सन् १९७० में डाक विभाग एक विशेष डाक टिकट जारी किया था जिसके आधे भाग में महर्षि वाल्मीकि को रामायण महाकाव्य की रचना करते हुए तथा दूसरे अर्ध भाग में राम, सीता एवं लक्ष्मण को दर्शाया गया था।

सन् १९७३ में प्रकाशित दो अलग-अलग डाक टिकटों में राधा व कृष्ण को क्रमशः नृत्यरत एवं ऊँट पर बैठा हुआ दर्शाया गया था। सन् १९७४ चार डाक टिकटों का एक मिनिएचर सीट जारी किया गया था, जिसमें क्रमशः सूर्यदेव, चन्द्रमा, नरसिंह तथा रावण का चित्र छपा था। साथ ही इसी वर्ष भगवान् महावीर जैन पर एक डाक टिकट प्रकाशित किया गया।

सन् १९७५ में श्रीरामचरितमानस पर भारत सरकार ने एक डाक टिकट जारी किया था, जिस पर उक्त महाकाव्य की निम्नलिखित पंक्तियाँ अंकित की गईं- “कीरति भनिति भूसि भलि सोई। सुरसरि सम सब कहाँ हित होई।” वर्ष १९७८ में श्रीमद्भगवद् गीता पर भी एक डाक

टिकट का प्रकाशन हुआ, जिसमें रथ पर आरूढ़ श्रीकृष्ण और अर्जुन को संवाद करते हुए दिखाया गया था और नीचे यह सुप्रसिद्ध वाक्य अंकित किया गया- 'कर्मण्येवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचना।' ब्रिटेन में सन् १९८२ में आयोजित भारत-महोत्सव के अवसर पर भारतीय डाक विभाग ने एक विशेष डाक टिकट प्रकाशित किया था, जिसमें श्रीकृष्ण को कालिया नाग का मरदन करते हुए चित्रित किया गया था। साथ ही १९८५ के भारत महोत्सव के अवसर पर यक्षी की प्रतिमा वाला टिकट प्रकाशित किया गया था।

सन् १९७५ में नागपुर में आयोजित विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर वाग्देवी सरस्वती की प्रतिमा से युक्त एक विशेष डाक टिकट जारी किया गया तथा इसी वर्ष हैदराबाद में आयोजित विश्व तेलगु सम्मेलन के अवसर पर वाग्देवी की



ठीक वैसी ही प्रतिमा को डाक टिकट पर अलग रंग में प्रस्तुत किया गया।

सन् १९६६ में ऋतुओं को केन्द्रीय विषय बनाकर प्रकाशित किए गए चार डाक टिकटों के विशेष सेट में श्रीकृष्ण को गोपियों के साथ अनेक मुद्राओं में दर्शाया गया था। विश्व प्रसिद्ध मधुबनी चित्रकला शैली में सन् २००० में भारतीय डाक विभाग द्वारा पाँच टिकटों की एक विशेष शृंखला जारी की गई। जिसमें बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण के साथ सखियों को; श्रीराम और सीता को तथा ऐसे ही सांस्कृतिक चित्रों को स्थान दिया था।

भगवान् महावीर के २६००वें जन्मकल्याणांक के अवसर पर सन् २००१ में जैन पंथ के प्रतीक चिह्न के साथ 'परस्परोग्रही जीवानोम' वाक्य को समन्वित कर एक डाक

टिकट प्रकाशित किया गया था। स्मरणीय है कि सन् १९७४ में विश्व डाकसंघ की शताब्दी के अवसर पर स्वस्तिक के पवित्र चिह्न के मध्य पृथ्वी (ग्लोब) को दर्शाते हुए एक विशेष डाक टिकट प्रकाशित किया गया था।

भारतीय डाक विभाग ने न केवल हिन्दू देवी-देवताओं पर, अपितु हिन्दुओं के पवित्र धर्मस्थलों, तीर्थों, मठ-मन्दिरों आदि को भी समय-समय पर डाक टिकटों में स्थान दिया है। साथ ही हिन्दुत्व नव-जागरण के अनेक महापुरुषों, सन्त-महात्माओं व भक्त कवियों पर भी अच्छी संख्या में डाक-टिकट प्रकाशित कर इनके माध्यम

से सारी दुनियाँ को हिन्दू-संस्कृति, धर्म एवं दर्शन से परिचय कराया है। परन्तु इससे भी महत्वपूर्ण है विदेशों में हिन्दू देवी-देवताओं पर डाक-टिकटों का प्रकाशन जो भारत को उन देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने में महती भूमिका निभाकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उदात्त भारतीय चेतना को जीवन्त बनाते हैं।

सेनापति भवन, सिकन्दरपुर
मुजफ्फरपुर-८४२००१



ज्योतिर्विद् डाक का जन्मस्थान

मेष-मीन तिअ दण्डा दीअ, ता उप्परि दिअ पल अठतीअ।
वृष-कुम्भ चौदण्डा मान, पल एगारह भुगुतिअ मान।
मिथुन मकर पल तीनि गुनू कर्कट तेतालीस धनू।
सिंहहि वृश्चिक सप्ततलीस तुल सह कन्या पल अठतीस
मिथुना सजो मोजे, मोजे सब पल कहिये
पाँचे दण्डे सबे पल लहिआ॥

मिथिला के प्रसिद्ध कवि विद्यापति के पुत्र म०म० हरपति ने अपने ग्रन्थ 'व्यवहारप्रदीप' में 'डाक' के इस वचन को उद्धृत किया है। जनभाषा में लिखित इस वचन में ज्यौतिष शास्त्र के अनुसार एक दिन में प्रत्येक राशि में सूर्य के गमनकाल की गणना मिथिला के अक्षांश देशान्तर के सन्दर्भ में छह अंगुल पलभा के आधार पर दिया गया है। इस प्रकार १५वीं शती से पूर्व मिथिला में डाक नामक एक ज्यौतिषी हुए थे, यह सिद्ध होता है। इस 'डाक' के अनेक वचन लिखित और अलिखित परम्परा में उपलब्ध हैं, जिनमें "कहथि गोआर", "कहि गेल डाक गोआर", "कहिअ गोआरे" आदि भनिताएँ हैं। इससे वे 'गोआर' (ग्वाला) जाति के सिद्ध होते हैं। इनके वचनों को समग्र समाज में सदियों से मान्यता मिली है तथा म०म० हरपति, म०म० शुभंकर ठाकुर, म०म० पशुपति आदि व्यवहार-शास्त्र के निबन्धकारों ने इन्हें प्रमाण के रूप में अपने संस्कृत-ग्रन्थों में सादर उद्धृत किया है।

तुलसी की अप्रस्तुत-योजना

○ डी० आर० ब्रह्मचारी

b b

काव्य में अप्रस्तुत योजना से मूर्त अमूर्त तथा अमूर्त मूर्त और मूर्त सहज संवेद्य हो उठता है। निश्चय ही इसमें कल्पनाशक्ति की- प्रतिभा की महती भूमिका होती है, पर यह उससे ही संभव है जिसे भाव जगत् और दृश्य जगत् के गंभीर अध्ययन के साथ-साथ भावन-विभावन में निपुणता हो।

प्रसंग 'मानस' के अयोध्याकांड का है। कैकेयी सम्राट् दशरथ के अरमानों को कुचलती हुई उन्हें बेधने वाले अपने दोनों वर की याचना आखिर कर ही डालती है-

(१) देहु एक वर
भरतहि टीका।

(२) तापस वेश विशेष
उदासी। चौदह बरस
राम वनवासी।

कहना नहीं होगा कि दशरथ के प्राण राम में बसते हैं। अर्थात् राम दशरथ की दुर्बलता हैं। वह उन्हें अजात शत्रु माने बैठे हैं-

जिए मीन वरु वारिविहीना।
मनि बिनु फनिक जिस दुख दीना॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं।
जीवन मोर राम बिनुनाहीं॥

इधर,

प्राणप्रिया सुत सरबसु मोरें।
परिजन प्रजा सकल बस तोरें।
जौं कछु कहौं कपटु करितोही।
भामिनि राम सपथ सतमोही।

का उच्चार कर वह कैकेयी की प्रति अपनी आत्यंतिक प्रियता भी अलक्षित नहीं होने देते। फिर तो वृद्ध दशरथ की नौका को उस नियत जल में बूडने से कौन रोक सकता है?

देवासुर संग्राम का यह अप्रतिम योद्धा अपनी ही प्राणवल्लभा के वचन से विंधकर आहत हो जाता है, जैसे कोक को

शशिकर छू गया हो। यही

नहीं उनकी स्थिति ऐसी

हो जाती है जैसे

कबूतर को बाज ने

खदेड़ डाला हो,

वह भी सँकरी

जगह में नहीं, खुले

वन में, जहाँ अपना

कमाल दिखाने का

उसे यथेच्छ अवकाश

रहता है। परिणामस्वरूप

लम्बे तालवृक्ष पर जैसे करकापात

हो जाता है- समूलोच्छेद। उनके घर के चिराग से

ही उनका घर दग्ध हो उठता है। उनके मनोरथ

के कल्पवृक्ष के फूल के फलते वक्त ही, ऐन

मौके पर हथिनी द्वारा धराशायी कर दिया जाता है,

योगी को योगफल की सिद्धि के समय ही स्वयं

उसी की अविद्या उसका सर्वनाश कर डालती है।

ऐसे कोमल-मार्मिक-मृदुल-मसृण प्रसंग

को अपने अप्रस्तुत विधान द्वारा संबध बनाने की

सिद्धहस्तता कोई बाएँ हाथ का खेल नहीं। अकारण

नहीं कविता को शुक्लजी ने भाव योग कहा है,

ज्ञान योग के समकक्ष, हृदय की मुक्तावस्था का

काव्य में जहाँ विषयान्तर के वर्णन से विषय का चमत्कार पूर्ण संकेत होता है वहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार माना गया है। तुलसीदास के मानस में यह चमत्कार घटनाओं और दृश्यों का संकेत करता है जो 'मानस' को काव्य-सौन्दर्य से मण्डित कर देता है। प्रस्तुत है यह आलेख-

उदाहरण, अलंकार और अलंकार्य का सांकर्य।

यह प्रसंग अकेला नहीं है। 'मानस' के पृष्ठ ऐसे चित्रों से आपूर्ण हैं जहाँ कवि उत्प्रेक्षा के पीछे नहीं लगता, उत्प्रेक्षा स्वयं हाथ-पाँव धोकर कवि के पीछे लग पड़ती है। इसकी अद्भुतता पर 'रूपवाद' की चिप्पी चपका कर दरकिनार नहीं किया जा सकता और न इसकी वस्तु को 'आउटडेटेड' कहकर खारिज हो। प्रकारान्तर से आज भी आप तत् सदृश देखते रहते हैं। देखकर भी नहीं मानना असाध्य रोग है, लाइलाज।

इतने पर भी कैकेयी दम कहाँ लेती? तावड़ तोड़ वार पर वार किए डालती है, वह निशाना चूकना जानती ही नहीं। ग्राम्यांचलों में इसे ही कहते हैं- खोर-खोरकर डाहना-

सत्य सराहि कहेउ वरु देना।

जानेहु लेइहि माँगि चबेना।

अति कटु वचन कहत कैकेई।

मानहु लोन जरे पर दे ई।

सत्य की सराहना कर वर देने की बात की थी। सोचा होगा चबेना-तबेना कुछ माँगकर अपना सन्तोष कर लेगी। नहीं? और अब स्वीकृति प्रदान करने की घड़ी प्राण कंठगत हो रहे हैं! वाह रे पुरुष पुंगव!

यहाँ दिनकर का स्मरण स्वयमेव हो जाता है- रक्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी। क्योंकि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करता है।

दलकि उठेउ सुनि हृदयउ कठोरू।

जनु छुइ गयउ पाक वर तोरू।

पहले की कैकेयी की वासना से पूर्णतः अनभिज्ञ राजा दशरथ अह्लादित होकर अपनी प्राणवल्लभा से यह सुखद सूचना निवेदित करते हैं-

रामहिं देउँ कालि जुब राजू।

सजहि सुलोचनि मंगल साजू।

सुनयने! कल ही राम का अभिषेक करने जा रहा हूँ। आनंदित होकर मंगल साज सजाओ

कि सुनते ही उसका कठोर हृदय एक बारगी दलक उठता है मानो पका बलतोड़ फोड़ा छू गया हो। यहाँ 'जनु छुइ गयउ पाक वर तोरू' औपम्य चयन ध्यातव्य है। वैसे ही-

ऐसिउ पीर विहंसि तेहिं गोई।

चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई।

दशरथ समझ नहीं पाते कि यहाँ दूसरी खिचड़ी पक रही है। दशरथ के मनोरथ से उत्पन्न अपनी पीड़ा को कैकेयी हँसकर छिपा लेती है जैसे चोर की पत्नी रहस्य खुलजाने के भय से प्रकट होकर रो नहीं सकती- 'चोर नारि जिमि प्रकट न रोई।' इसे ही कहते हैं, अरथ अमित अति आखर थोड़े। आज की कविता में जिसका अभाव होता जा रहा है, चाहे वह छन्दोबद्ध रचना हो अथवा छन्दमुक्त भाग-दौड़ में लोग समाधिस्थ हो कहाँ पाते हैं? और बिना समाधिस्थ हुए उत्कृष्ट रचना आकाश कुसुम ही तो है। फलतः कविता दीर्घायुष्य हो नहीं पाती है और आलोचक महोदय तो मत पूछिए। कविताको मथकर निकष तैयार करना भूलकर वे सब कुछ बेचकर कुछेक निश्चित मानदंडों में कविता को फिट देखने के आदी जो हो चुके हैं। संक्रामक रोग की तरह यह प्रवृत्ति कविता की सीमा लाँघकर साहित्य की अन्य विधाओं को भी संक्रमित करने पर तुली है।

द्रव्य और अप्रस्तुत विधान- सिद्ध कवि की दृष्टि युगपत् होती है। शुक्लजी लिखते हैं- आधुनिक पाश्चात्य समीक्षा क्षेत्र में तो 'कल्पना' शब्द से अधिकतर अप्रस्तुत विधायिनी कल्पना की समझी जाती है। अप्रस्तुत योजना के संबंध में भी वही बात समझी जानी चाहिए जो प्रस्तुत के संबंध में हम कह आए हैं अर्थात् उसकी योजना भी यदि किसी भाव के संकेत पर होगी- सौन्दर्य, माधुर्य, भीषणता, कांति दीप्ति इत्यादि की भावना में वृद्धि करनेवाली होगी- तब तो वह काव्य के प्रयोजन की होगी; यदि केवल रंग, आकृति, छोट्टाई, बड़ाई आदि का हिसाब-किताब बैठाकर

की जाएगी तो निष्फल ही नहीं, बाधक भी होगी। भाव की प्रेरणा से जो अप्रस्तुत लाए जाते हैं उनकी प्रभुविष्णुता पर कविदृष्टि रहती है; इस बात पर रहती है कि इनके द्वारा भी वैसी ही भावना जगे जैसे प्रस्तुत के संबंध में है।

-रसमीमांसा, पृ. २४०, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, संस्करण २०२३।

भावना की वृद्धि से ध्यान हटाकर केवल रंग, आकृति, छोटाई, बड़ाई आदि का हिसाब-किताब बैठाकर की गई अप्रस्तुत योजना का नमूना होता है, नागमती का निम्नलिखित विरह-वर्णन-

प्रिय सौं कहेहु संदेसरा, ऐ भौंडा ऐ कागा।
सो धनि विरहें जरिमई, रतेहिक धुआँ हम्हललागा।

विरह के चार स्तर होते हैं- पूर्वराग अर्थात् मिलन से पूर्व की अनुरक्ति, मान अर्थात् रूठने के कारण वियोग, प्रवास अर्थात् स्थानान्तर स्थित वियोग तथा वरुण अर्थात् मृत्युजनित वियोग जो विप्रलंभशृंगार न होकर करुण में परिणत हो जाता है। यहाँ स्थिति वैसी ही है।

वैसे ही दुर्बल अप्रस्तुत विधान का उदाहरण बिहारी के प्रस्तुत सौन्दर्य-चित्र में देखा जा सकता है-
**पत्रा ही तिथि पाइए, वा घर के चहुँपास।
नित दिन पूनम ही रहयो, आनन ओप उजास।।**

नायिका के मुख-सौन्दर्य का चित्र खींचते हुए यहाँ कहा गया है कि मुख के प्रकाश की चमक के कारण वहाँ नित्य पूर्णिमा ही रहती है। नायिका के घर के पास किसी को तिथि की जानकारी लेनी होती है तो पत्रा देखकर ही।

इस प्रकार के अप्रस्तुत विधान से भावना में वृद्धि के विपरीत उद्वेग उत्पन्न हो जाता है जो दोष कारक है- **उद्वेगजनको दोषः।** जिसे शुक्लजी ने 'ऊहा' कहना समीचीन समझा है।

अब तुलसीदास का वियोग-वर्णन भी देखा जा सकता है। राम वियुक्त सीता के प्राण इसलिए नहीं निकल रहे हैं कि उसके प्रियतम के

नाम का जाप पहरए का काम कर रहा है। दिन-रात और उसके ध्यान का ही वज्र कपाट लगा हुआ है। नेत्र अपने पैर से बँधे हैं। भला प्राण निकलेंगे भी तो द्वार है कहाँ-

**नाम पहरु दिवसनिसि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निजपद जंत्रित, प्राण जाहिं केहिबाट।।**

उसी प्रकार उनके द्वारा चित्रित सीता का सौन्दर्य देखिए:-

जौं छवि सुधा पयोनिधि होई।
परम रूप मय कच्छप सोई।
सोभा रजु मंदर सिंगारू।
मथै पानिपं कज निज मारू।

एहि विधि उपजइ, लच्छितब, सुंदरता सुखमूल।
तदपि संकोच समेत कवि, कहहि सीय सम तूल।

सौन्दर्य के अमृत का समुद्र हो, परमोत्तम रूप स्वयं कच्छप हो, शोभा ही का रज्जु हो, शृंगार रस स्वयं मन्दर का कार्य करे, मंथन का कार्य कामदेव के हाथो हो, यदि इस प्रकार लक्ष्मी उत्पन्न हो तब संकोच के साथ कवि कहेंगे कि वह सीता के समतुल्य हो सकेगी।

भावों में डूबे बेगैर, केवल ऊपर-ऊपर छलकने से अच्छी कविता नहीं बन पाती। अब तो इसका निर्णय करने वालों की संख्या भी कमती जा रही है।

तुलसी का अप्रस्तुत विधान कहीं पौराणिक है तो कहीं काल्पनिक, कहीं प्राकृतिक है तो कहीं स्वसृजित। परंपरा-निर्वाह के साथ-साथ उनमें मौलिक उद्भावनाएँ भी परिलक्षित होती हैं, पर हैं वे अपने रसोद्बोधन से पूर्णतः सक्षम। यही कारण है कि उन्हें पुनः पुनः देखकर भी पुनः पुनः देखने की भूख बनी रहती है।



अध्यक्ष

हिंदी-विभाग, बी०आर०बी० कॉलेज

समस्तीपुर-२४५१०१

ब ब

सिंहासनबत्तीसी : कथाशिल्प का निहितार्थ

○ डॉ० श्यामसुन्दर घोष

ब ब

मैं सिंहासनबत्तीसी को एक लम्बे समय तक किस्से-कहानियों की पोथी ही समझता रह जाता, यदि मित्रवर डा० श्रीरंजन सूरिदेव इसका हिन्दी अनुवाद मेरे पास समीक्षार्थ न भेजते। मेरा ख्याल है कि मेरी तरह आप अनेक

पाठक भी सिंहासनबत्तीसी और

बेतालपचीसी-जैसी कृतियों को

रोचक और लुभावनी

कथाकृतियों के रूप में

ही जानते और

पढ़ते-सुनते रहे हैं।

हमारे अधिकांश

प्राचीन ग्रंथों की

बनावट ऐसी है कि

वे ऊपर-ऊपर से बहुत

हल्की-फुल्की रोचक

कहानियाँ लगती हैं, पर

उनका एक गहन और अर्थपूर्ण

आशय भी होता है। ये कथा-कहानियाँ दो

स्तरों पर पढ़ी-सुनी और समझी जाती हैं। एक तो

सामान्य जन के स्तर पर और द्वितीय विशेष जन

के स्तर पर। उनका सामान्य अर्थ और आशय

इतनी प्रचलित और प्रभावी होता है कि उसका

गहन आशय बहुत कुछ अलक्षित रह जाता है।

सिंहासनबत्तीसी के साथ भी ऐसा ही

हुआ है। इसमें राजा विक्रमादित्य के सिंहासन में

जड़ी बत्तीस पुतलियों के माध्यम से राजा विक्रमादित्य संबंधी बत्तीस कथाएँ कही गई हैं। वह योंकि जब राजा भोज को विक्रमादित्य का बहुत पुराना रखा सिंहासन मिलता है, तो वे तय करते हैं कि अब उसी पर बैठकर राज-काज करेंगे। इसी आशय से

वे शुभ मुहूर्त में सिंहासन पर पदासीन

होना चाहते हैं। वे जैसे ही

आगे बढ़ते हैं, तो पहली

पुतली उनसे कहती है-

“हे राजन्! यदि आपमें

राजा विक्रमादित्य-जैसी

शूरता, उदारता, बल

स्वभाव आदि है, तो

इस सिंहासन पर

बैठिए। (पृ०- ३१)

आगे भी वह कहती

है- “हे राजन्, यह राजा

विक्रमार्क का सिंहासन है।

याचकों के प्रति प्रसन्न होने पर

वह एक करोड़ सुवर्ण-मुद्रा उन्हें देते थे। इसके

अतिरिक्त जो याचक उनकी नजरों के सामने पड़

जाता, उसे एक हजार, जो बोलकर प्रार्थना करता,

उसे दस हजार और विद्यावन्त गुणी दरिद्रों को

एक लाख स्वर्ण मुद्रा देते थे। यदि आपके हृदय

में भी ऐसी ही उदारता है तो इस सिंहासन पर

बैठिए।” (पृ. ३१-३२) इस पर राजा मौन रह

जाते हैं। इसी प्रकार सिंहासन से लगी पुतलियाँ,

संस्कृत में पंचतन्त्र
हितोपदेश, वेतालपंचविंशतिका आदि
कथा-काव्यों का संसार अत्यन्त समृद्ध है।
इन्हें लोक-कथा की श्रेणी में रखा जा सकता
है। इन्हीं में सिंहासनद्वात्रिंशिका या
विक्रम-चरित से प्रसिद्ध कथा-काव्य में
निहित गूढ़ राजनीति-दर्शन पर डॉ०
श्यामसुन्दर घोष की लेखनी से
विवेचना प्रस्तुत है।

राजा को बत्तीस बार, राजा विक्रमादित्य के शौर्य पराक्रम, दया, दानशीलता, शूरवीरता का हवाला देती कहती है- 'यदि आपमें भी ये सब गुण है, तो इस सिंहासन पर बैठिए।' राजा हर बार चुप रह जाते हैं, फिर उन्हें विक्रमादित्य की यशो-गाथा सुननी पड़ती है। अन्त में बत्तीसवीं पुतली कहती है- "हे भोजराजा, राजा विक्रमादित्य तो वैसे प्रतापी थे, लेकिन आप भी सामान्य राजा नहीं है। आप दोनों नर और नारायण के अवतार हैं। इसलिए, इस समय, आपसे बढ़कर परम पवित्र चरित्र से युक्त, सकल कलाओं में प्रवीण और उदारता आदि गुणों से विभूषित राजा अन्य नहीं है।" (पृ०- ४८-४९) अर्थात् बत्तीसवीं पुतली राजा भोज को सिंहासन पर बैठने का क्लीन चिट दे देती है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि राजा भोज सिंहासन पर बैठने के योग्य थे, तो उन्हें बत्तीस बार क्यों रोका गया? इसके जबाब में बत्तीसीकार ने बताया है कि ये बत्तीस पुतलियाँ देवी पार्वती की नर्तकियाँ थीं जिनके नाम इस प्रकार हैं- "१. मिश्रकेशी, २. प्रभावती, ३. सुप्रभा, ४. इन्द्रसेना, ५. सुढती, ६. अनंगनयना, ७. कुरंगनयना, ८. लावण्यवती, ९. कामकलिका, १०. चण्डिका, ११. विद्याधरी, १२. प्रज्ञावती, १३. जनमोहिनी, १४. विद्यावती, १५. निरुपमा, १६. हरिमध्या, १७. मदनसुन्दरी, १८. विलासरसिका, १९. शृंगारकलिका, २०. मन्मथसंजीवनी, २१. रतिलीला, २२. मदनवती, २३. चित्ररेखा, २४. सुरतगह्वरा, २५. प्रियदर्शना, २६. कामोन्मादिनी, २७. सुखसागरा, २८. शशिकला, २९. चन्द्ररेखा, ३०. हंसगामिनी, ३१. कामरसिका और ३२. उन्मादिनी।" (पृ. १४९) आगे बताया गया है- "एक दिन अतिशय प्रेम और विलास-भावना से बिहारगृह में स्थित

शंकर और पार्वती एक-दूसरे को देख रहे थे। उसी समय, दुर्बुद्धिवश नारी जन सुलभ कौतुक से नर्तकियों ने उन्हें देख लिया। इससे पार्वती ने क्रुद्र होकर हमें शाप दे दिया- "तुम सभी पुतली होकर इन्द्र के सिंहासन में लग जाओ।" (पृ., वही)

इसपर जब पुतलियाँ देवी पार्वती से कहती हैं- "हमें इस शाप से मुक्ति कैसे मिलेगी, तो देवी पार्वती कहती है- "जब इन्द्र का सिंहासन राजा विक्रमादित्य से अधिष्ठित होकर पुनः राजा भोज को प्राप्त होगा और जब राजा भोज तुम लोगों से राजा विक्रमादित्य का चरित सुनेंगे, तभी तुम लोगों के शाप का अन्त होगा।" (पृ०, वही) इसी वजह से बत्तीस पुतलियाँ राजा भोज को बत्तीस कथाएँ सुनाती हैं और भोज उन्हें सुनते रहते हैं।

भोज यदि आज कोई शासक होता, तो पहली पुतली को ही डाँटकर कहता- "चल! हट! बड़ी आई है मुझको सिंहासन पर बैठने से रोकनेवाली। तेरी क्या औकात है? यह हिम्मत और हिमाकत।" पुतली बेचारी सहम कर चुप हो जाती। उसकी यह दशा देखकर और किसी पुतली का साहस न होता कि राजा को सिंहासन पर बैठने से रोकती। लेकिन राजा भोज ऐसा नहीं करते। यहाँ बत्तीसीकार ने यह दिखाना-बताना चाहा है कि राजा को संवेदनशील होना चाहिए उसको एक अच्छा श्रोता होना चाहिये। उसमें हर की बात सुनने का धैर्य और माथा होना चाहिये- चाहे वह सिंहासन में जड़ी कोई पुतली ही क्यों न हो। जब राजा इतना सहनशील और संवेदनशील होता है, तभी उसके राज्य का हर कोई अपनी बात निर्भीकता पूर्वक राजा के सामने रख सकता है, उम्मीद कर सकता है कि राजा उसकी बात सुनेगा। इसपर विचार करेगा, उसे डाँटकर चुप

नही करा देगा। दंड देने की बात नहीं करेगा। मुझे लगता है कि बत्तीसीकार का उद्देश्य प्राचीन भारतीय राजतंत्र की विशेषता को बताना, उसका बखान करना भी है। इस अर्थ में यह केवल एक कथा-रचना नहीं, राजनय और राजनीति की पोथी भी है। इस रूप में इसे कम देखा गया है।

आज के आधुनिकतावादी विचारक पाश्चात्य दृष्टि सम्पन्न बुद्धिजीवी राजतंत्र को सर्वथा अनुपयोगी और अप्रासंगिक मानते हैं। राजतंत्र का ख्याल ही एक तरह से उनकी दृष्टि में त्याज्य है। उनका ऐसा दृष्टिकोण मुख्यतः पाश्चात्य राजतंत्र के अध्ययन और अनुभव के आधार पर बना है। ये जब गाँधीजी को रामराज्य की बात करते, पाते और सुनते थे तो नाक भौ सिकोड़ते थे, कहते थे गाँधीजी इतिहास की गाड़ी को पीछे ले जाना चाहते हैं, दुनिया राजतंत्र के युग से कहीं आगे निकल चुकी है। वह आज जनतंत्र की ओर धावित है। पर उन्हें नहीं मालूम कि जनतंत्र में भी राजतंत्र होता है, जनप्रतिनिधि भी राजाओं जैसा ही और कभी-कभी तो स्वेच्छाचारी राजाओं जैसा व्यवहार करते हैं, पर सत्ता मिलते ही वे इतनी मनमानी करने लगते हैं कि कोई राजतंत्र का राजा क्या करता होगा। उसी प्रकार आज भी कभी-कभी या कहीं कहीं, राजतंत्र व्यवस्था में भी जनतंत्र देखा जा सकता है, उसमें जनतांत्रिक व्यवस्था सम्भव बनाई जा सकती है। इसलिए सवाल व्यवस्था का नहीं उसे चलानेवालों का है। हमें इसीपर जोर देना चाहिये, इसीपर ध्यान देना चाहिये। आज जनतंत्र के नाम एक नये समाजवाद, उपनिवेशवाद का बोलबाला होता जा रहा है। जनतंत्रात्मक देश, दूसरे देशों पर हमला कर रहे हैं उन्हें अपने उपनिवेश बनाने की कोशिशें कर रहे हैं। वहाँ अपनी कठपुतली सरकारें

बनवा रहे हैं, वहाँ अपनी सेनाएँ रख रहे हैं। यह कौन सा जनतंत्र है? इससे तो अच्छे हमारे पुराने राजतंत्र थे जिसमें राजा शत्रु राज्य पर विजय प्राप्त करने के बाद भी, वहाँ के शासन में दखल नहीं देते थे, उसकी रीति-नीति खुद नहीं निर्धारित करते थे, पराजित राजा को मित्र बनाकर मानवीय गरिमा का प्रमाण देते थे।

बत्तीसीकार ने कथा के माध्यम से यह दिखलाना चाहता है कि एक आदर्श शासन व्यवस्था में सजीव निर्जीव सबको समान अधिकार होना चाहिये। मनुष्य जैसे बोल सकता है, वैसे ही सिंहासन से जुड़ी पुतली भी बोल सके, तो हम समझे कि हाँ, यह कोई बात है। यहाँ ऐसा भी सम्भव हुआ है।

सजीव निर्जीव में जैसा भेद किया जाता है वैसा भेद उनमें होता नहीं। सजीव भी बहुत बार निर्जीव होते हैं, उससे बढ़कर निर्जीव होते हैं। निर्जीव की निर्जीविता हमें उतनी नहीं खटकती, उतनी नहीं अखरती जितनी की सजीव की निर्जीविता खटकती और अखरती है। कभी-कभी तो एक पूरा सजीव समुदाय इतना निर्जीव हो जाता है कि कहीं कोई प्रतिकार, विरोध, विद्रोह नहीं करता, अन्याय, अत्याचार, बलात्कार, दुराचार सहता रहता है। उफ तक नहीं करता, कराहने चीखने की बात तो छोड़ ही दीजिये। ऐसे में यदि निर्जीव वस्तुएँ सिंहासन, छत्र, दंड और चँवर आदि बोलने लगे तो इसपर किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिये। सजीवों को निर्जीव होते देख यदि निर्जीवों को कुछ प्रेरणा मिले, तो इसे स्वाभाविक मानना चाहिये, इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है। साहित्य में तो ऐसा ही होता है, ऐसा ही होना चाहिए। ऐसा होने से ही शायद सजीवों में यह भाव जगे कि क्या वे इतने गये बीते हैं जो प्रतिक्रिया निर्जीव करते हैं, वे वैसी ही, उतनी भी न कर सकें? यह उनमें ग्लानि का

भाव जगाकर उन्हें सक्रिय कर सकता है। साहित्य में निर्जीवों का मानवीयकरण सदा से होता रहा है। यह केवल अलंकार मात्र नहीं है, उसका गूढ़ाशय भी होता है, हो सकता है।

हम बत्तीसीकार की शाप योजना को थोड़ी देर के लिये अमान्य भी कर दें। यही उचित है। आज की दृष्टि से यही उचित है। पुराने जमाने की कृतियों में शापयोजना का बहुत उपयोग हुआ है। कालिदास तक ने अपने नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में इसका उपयोग किया है। पर आज के बुद्धिवादी पाठकों को यह बात जँचती नहीं, सब कुछ शाप से होता है और फिर जो शाप देता है, वह मुक्ति का उपाय भी बता देता है, यह बात आज के लोगों को जँचती नहीं। इसलिए हम बत्तीस पुतलियों का अर्थ सिंहासन से लगी बत्तीस पुतलियों से ही लेना उचित समझते हैं। ये देवी पार्वती की बत्तीस नृत्यांगनाएँ हैं और शायद सिंहासन से आ लगी हैं, यह मानना जरूरी नहीं है। बल्कि यह मानना ज्यादा स्वाभाविक और प्रासंगिक है कि बत्तीसो पुतलियाँ राजा भोज को परखना चाहती हैं कि उनमें आदर्श राजा की सहनशीलता सबको सुनने की उदारता चित्त की विशदता आदि मानवीय गुण हैं, या नहीं। जो राजा सिंहासन पर आकर बैठेगा, जिसे सिंहासन धारण करेगा, क्या उसमें जुड़ी, उससे जुड़ी पुतलियों का इतना भी अधिकार नहीं है कि वे जान सके, परख सके कि सिंहासन पर आसीन होनेवाला शख्स किस द्रव्य का, किस मिट्टी-पानी का बना है। इस प्रकार बत्तीसकार ने अपने निर्जीव पात्रों को भी इतनी चेतना दी है इतना गैरत और साहस दिया है, वे राजा से निर्भीक सवाल जबाब कर सकें। कठपुतलियों को इस रूप में देखने पर रचना का एक नया आयाम ज्यादा उपयोगी और प्रासंगिक आयाम, खुलेगा

और रचना ज्यादा अर्थ गर्भ प्रतीत होगी।

सिंहासन राजसत्ता का, शासनसत्ता का प्रतीक है। ऐसे प्रतीक और भी हैं, जैसे छत्र, दंड, चँवर आदि। आप राजाओं के राजदरबारों के जो पुराने चित्र देखते हैं, तो उसमें ये सभी हैं। राजा इन सबसे युक्त होकर ही सुशोभित होता है। इसमें से यदि कोई एक भी नहीं है, तो राजसत्ता में कुछ कमी प्रतीत होती है। कभी-कभी प्रतीकों का व्यक्ति से अधिक महत्व होता है, वे उसके स्थानापन्न तो होते ही हैं। भरत ने राम से उनकी पादुका क्यों माँगी थी? पादुका भी तो प्रतीक ही है। जब भरत ने राम से राम की पादुका की याचना की तो उन्होंने राम से उनका रामत्व माँगा। राम को भरत की याचना उचित लगी। उन्होंने पादुका सहर्ष दे दी। ऐसे ही छत्र, दंड, चँवर राज सत्ता के प्रतीक हैं जो अपने आप में पूर्ण और प्रभावी भी हैं। जब ये प्रतीक इतने महत्वपूर्ण हैं, तो उन्हें प्राणवन्त भी होना चाहिये। यदि राजा निकम्मा, नालायक निकल आये, तो क्या तब भी उसके ये प्रतीक उसके अनुगत बने रहेंगे? क्या अपनी स्वतंत्र सत्ता की घोषणा नहीं करेंगे? रचनाकार को इस दृष्टि से भी प्रतीकों का नियोजन और उपयोग करना चाहिये। यदि राजा अन्याय अत्याचार करने को उद्यत होने लगे, तो क्या छत्र, दंड, चँवर को अपनी क्रांतिकारी भूमिका नहीं निभानी चाहिये। जैसे राजा की सत्ता है, वैसे ही उसके प्रतीकों की भी सत्ता है। राजा को क्या अधिकार है कि वे प्रतीकों की मर्यादा का हनन करे? वे अधिक से अधिक अपने को भ्रष्ट और मूल्यच्युत कर सकते हैं, उनको यह अधिकार नहीं है कि वे परम्परा से पुष्ट और प्रचलित प्रतीक को भी नष्ट-भ्रष्ट करे। ऐसा होने पर प्रतीकों को सामने आना ही होगा। जब तक राजा ठीक राह पर है,

तब तक प्रतीकों को कुछ कहने करने की जरूरत नहीं है। लेकिन जब वह दुराचार पर उतर आये, तो प्रतीक उसके लिए चुनौती होंगे ही। सिंहासन बत्तीसी में पुतलियाँ राजा के लिये चुनौती उतनी नहीं है जितनी की चेतावनी है। कृति को इस रूप में भी देखने की जरूरत है।

व्यक्ति के अपने न्यस्त स्वार्थ होते हैं, इसलिए वे सत्ता के विरुद्ध मुखर नहीं होते। लेकिन प्रतीकों और वस्तुओं के क्या स्वार्थ हो सकते हैं? इसलिए जहाँ मनुष्य चुप रह जाता है, वहाँ प्रतीक बोलने लगते हैं। सिंहासन पर बैठने से राजा भोज को और किसीने नहीं रोका, मंत्रियों ने नहीं रोका, कुलगुरु और कुलपुरोहित ने नहीं रोका, सभासदों ने नहीं रोका, रोक रही है तो सिंहासन से लगी पुतलियाँ। यहाँ रचनाकार का गहरा अभिप्राय है। कहावत है कि जिसपर बीतती है, दर्द भी वही जानता है। सिंहासन तो जमाने से रहे हैं, उनमें पुतलियाँ भी न जाने कब से लगाई जाती रही होगी, क्या वे केवल शोभा के लिये लगाई जाती थीं? उन्हें मानवीय आकृतियाँ क्यों दी जाती थी? सिंहासन में पुतलियाँ लगाने की बात राजा ने की हो, या सिंहासन बनानेवाले काष्ठ-शिल्पी ने सबके मन में यह अनजान भाव जरूर रहा होगा कि निर्जीव सिंहासन में भी कुछ मानवीय संस्पर्श हो। जहाँ मानवीय संस्पर्श होते हैं, वहाँ देर-सबेर, मानवीय क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं। सिंहासन बत्तीसी की पुतलियों के साथ भी ऐसा ही हुआ है। उनकी प्रतिक्रिया स्वाभाविक है।

सिंहासनबत्तीसी में वर्तमान शासन व्यवस्था के लिये भी कुछ अच्छे संकेत और महत्वपूर्ण सुझाव हैं। आज की जनतंत्रात्मक व्यवस्था में चुने हुए जनप्रतिनिधियों को शपथ दिलाये जाने का

प्रावधान है। चाहे विधायक हो या सांसद, मंत्री हो या मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री, सबको पदभार ग्रहण करने के पूर्व शपथ लेने के लिये कहा जाता है। वे जब शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने जा रहे हों, तो उनकी कुछ जाँच जरूर होनी चाहिये जैसे कि सिनसियरीटी टेस्ट, ऑनेस्टी टेस्ट आदि आदि। इन टेस्टों के करने पर ही, क्लीन-चिट मिलने पर ही, शपथ ग्रहण की सम्भावना बननी चाहिये। झूठे, धूर्त, स्वार्थी, मक्कार लोगों के शपथ ग्रहण का क्या अर्थ? आज तो ऐसे राजकीय शपथ ग्रहण ठीक उस शपथ की तरह है जो नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे न्यायालयों में गवाह और मामलों से जुड़े अन्य लोग, गीता या किसी अन्य धर्मग्रन्थ पर हाथ रखकर खाते हैं और फिर धड़ल्ले से ली गई शपथ की धज्जियाँ उड़ाते नजर आते हैं। आज जनप्रतिनिधियों के शपथ ग्रहण का कोई अर्थ नहीं रह गया है। सिंहासनबत्तीसी में राजा भोज कोई शपथ तो नहीं खाते पर जिस प्रकार पुतलियों के रोकने पर रुक जाते हैं और विक्रमादित्य की कीर्ति-कथा सुनते रहते हैं, वह उनके चित्त का परिस्करण-बोध जरूर स्पष्ट करता है।

प्रश्न उठता है कि क्या राजा भोज महाराज विक्रमादित्य की कीर्ति-कथा से परिचित नहीं थे कि पुतलियों द्वारा उसके कहे जानेपर चुपचाप सुनते रहे? क्या पुतलियाँ नहीं जानती थी राजा भोज को महाराज विक्रमादित्य के सभी वृत्तान्त अच्छी तरह मालूम हैं? फिर उन्होंने प्रचलित कहानी को क्यों बार-बार दुहराने का दुस्साहस किया?

यहाँ बत्तीसीकार ने एक अत्यन्त मानव सुलभ दुर्बलता को आधार बनाकर कथा की ऐसी योजना की है। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह

अपने आगे किसी की, प्रशंसा तो और भी नहीं सुनना चाहता। यह प्रशंसा उसीका कोई अनुगमन करे, यह तो उसे और भी स्वीकार नहीं। जब यह दुर्बलता एक साधारण मनुष्य में होती है तो राजा का प्रतापी राजा का कहना ही क्या है? हर सम्राट् अपने पूर्व के सम्राटों से अपने को श्रेष्ठतर या कम से कम समकक्ष, तो जरूर देखना चाहता है। मुगल शासकों में यह स्वाभाविक कमजोरी थी कि वे अपने से पहले बने भवनों, बुर्जों और किलों के ऊपर हिस्से को तुड़वाकर अपने काल और नाम की गुम्बद या छतरी बनवा देते थे, ताकि लोग और आनेवाली पीढ़ियाँ उस भवन, बुर्ज और किले को उसके नाम से भी जान सकें, पूर्व की कीर्तिकथा और स्थापत्य में उनका भी योगदान समझा जाये। भवनों, बुर्जों, किलों की पहचान उसके गुम्बदों और छतरी से ही की जाती है। इसीलिये वे एक दूसरी इमारत, बुर्ज या किला बनवाने की जहमत मोल लेने के बजाय एक अपेक्षाकृत आसान काम कर लेते थे, मुख्य भवनों, बुर्जों और किलों पर अपने नाम की गुम्बद या छतरी बनवा देते थे। इसी भाव के तहत वे अपने समय का इतिहास लिखवाते थे, वे अपने प्रतापी पुरखों की छत्रछाया में नहीं रहना चाहते थे, वे अपना चन्दोवा तले जीते थे, अपने शमियाने या कनात लगाते थे। वे अपनी रीति-नीति निर्धारित करते थे। वे **महाजनो येन गतः स पन्थाः** में विश्वास नहीं करते थे। लेकिन आदर्श राजा में यह क्षुद्रता और स्वार्थ नहीं होना चाहिये। उसे तो अपने पूर्व प्रतापी पुरखों का स्मरण करना चाहिये, उनके द्वारा किये अच्छे कार्यों और परम्पराओं को आगे बढ़ाना चाहिये, अपने को उन्हीं का वंशज और अंशज कहना और मानना चाहिये। रामकथा परम्परा में दशरथ, राम, लव, कुश आदि कम सफल और पराक्रमी नहीं हुए। लेकिन उन्होंने

बराबर अपने को रघुकुल का ही कहा, उसकी कीर्ति बखानी। बत्तीसीकार ने पुतलियों के बहाने से यह जानने की चेष्टा की है कि राजा भोज में विक्रमादित्य के प्रति यह भाव है या नहीं।

फिर पुतलियाँ विक्रमादित्य के सिंहासन की थीं तो उनका भी फर्ज बनता था कि वे विक्रमादित्य की कीर्तिकथा को, एक नया राजा पाकर न भुलाती। साधारणतः होता यह है कि राजसत्ता से जुड़े लोग राजा के बदलते ही पहले के राजा की सारी गुण-गरिमा भूल जाते हैं, या भुला देते हैं। तब अतीत से उनका कोई वास्ता ही नहीं रह जाता, उनके लिये उनका वर्तमान शासक ही सब कुछ होता है। वे अपने नये स्वामी के स्वागत में ही कसीदे पढ़ते हैं। बत्तीसीकार की पुतलियों ने ऐसा नहीं किया है। इससे प्रमाणित है कि न तो राजा भोज इतिहास-विमुख हैं और न विक्रमादित्य के सिंहासन की पुतलियाँ। जो पूर्व के इतिहास से विमुख नहीं होता, उसीके बारे में सोचा जा सकता है कि उनकी इतिहासोन्मुखता बनी रहेगी। इन बातों को यदि ध्यान में रखेंगे तो पुतलियों का विक्रमादित्य की कीर्तिकथा को बार-बार सुनाना और राजा भोज का उसे प्रेम और धैर्य से सुनाना स्वाभाविक लगेगा।

इस रूप में सिंहासनबत्तीसी एक इतिहास कथा भी है, जो इतिहास भी साक्षी रही पुतलियों द्वारा कथित होने के कारण, प्रमाणिक तो है ही, रोचक और मार्मिक भी है। यहाँ इतिहास संस्करणों के सहारे कथित है इसलिए यह इतिहास का संस्मरणारम्य भी है और इसमें कहने सुनने और वर्णन करने का रस भी है।



ऋतं वरा

गोड्डा, झारखण्ड

पिन- ८१४१३३

साधक व्यक्ति आनन्द के एक कण की भीख माँगने के लिए शब्द-स्पर्श रूपी कोल-भीलों की बस्ती में भटकता रहता है। विद्वानों की दृष्टि में मनुष्य की वास्तविक दरिद्रता यही है। इस दरिद्रता को दूर करनेवाली परिपूर्ण परमानन्द-स्वरूपिणी सम्पत्ति ही श्री है। यह श्री भगवती त्रिपुरसुन्दरी ही है और यही तीन रूपों (महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती) से ऊपर तुरीया (चौथी) मोक्षप्रदा स्वरूप धारण करनेवाली देवी त्रिपुरा है। अथवा भगवती त्रिपुर सुन्दरी है, जो द्वैत रूप में भासित होनेवाले जागतिक प्रपंच के या सांसारिक मायाजाल के दुर्भाग्य को दूर कर परम अद्वैत-रूप सौभाग्य को प्रदान करनेवाली है। यही भगवती सभी प्राणियों में अपनी-अपनी आत्मा के रूप में प्रतीत होती है। इस भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चक्र या श्रीचक्र से ही शिव से पृथ्वी-पर्यन्त तत्त्वमय जगत् का आविर्भाव होता है।

‘योगिनीहृदय’ में शिव अपनी प्रिया पार्वती से कहते हैं कि श्रीचक्र में त्रैलोक्यमोहन चक्र अवस्थित है, जिसमें अनङ्गकुसुमा, कामाकर्षिणी आदि गुप्त योगिनियों से भिन्न स्थूल मातृका स्वरूप प्रकट योगिनियों के साथ चक्रेश्वरी त्रिपुर सुन्दरी का भी सभी उपचारों से पूजन करना चाहिए (त्रिपुरेशी च चक्रेशी पूज्या सर्वोपचारकैः)।- तत्रैव, श्लोक १३०)

तृतीय ‘सर्वसंक्षोभण’ नामक चक्र की स्वामिनी त्रिपुरसुन्दरी अपने सौन्दर्य-गुण के कारण ही इस नाम को अन्वर्थ करती है। यह साधक की बुद्धि को शुद्ध करनेवाली तथा परमेश्वरी महिमा की सिद्धि देनेवाली है। त्रिपुरसुन्दरी के साधक का उद्देश्य साधक को मुक्तिमार्ग की ओर प्रेरित करना है। जैसा पहले कहा गया, यह देवी अनित्य और अपवित्र सांसारिकता के परम दुर्भाग्य को दूरकर नित्य, शुद्ध, परम प्रेमास्पद, सर्वस्पृहणीय परमशिव-स्वरूप को प्रकाशित करती है। यही इस देवी का सौन्दर्य है, यही इसका गुण और स्वभाव है। इस सौन्दर्य-गुण से समरस यह चक्रेश्वरी

त्रिपुरसुन्दरी, जैसा कहा गया, सर्वसंक्षोभण नामक तृतीय चक्र की अधिस्वामिनी है। प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय की त्रिपुटी से सर्वथा परे रहनेवाली यह महादेवी बुद्धि की शुद्धि करनेवाली है। बुद्धि की शुद्धि तब होती है, जब वह विषयों के सम्पर्क से अलग होकर निर्विकल्प चिदात्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होती है। यह देवी त्रिपुरसुन्दरी जीवात्मा की बुद्धि को निर्विकल्प स्वरूप में प्रतिष्ठित करती है। इसलिए, यह महिमा सिद्धि-स्वरूपिणी है। बुद्धि जब बाह्य विषयों से सम्पृक्त नहीं रहती, तब उसके समक्ष चिदात्मस्वरूप की महिमा आलोकित हो उठती है। इसलिए, इस महिमासिद्धि-प्रदात्री चक्रेश्वरी देवी की समस्त उपचारों के साथ पूजा करनी चाहिए।

महिमा प्रसिद्ध आठ सिद्धियों में एक है। आठ सिद्धियाँ इस प्रकार हैं:- अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। मतान्तर से आठ सिद्धियाँ ये हैं: अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता। महिमा सिद्धि जिसे प्राप्त हो जाती है, वह अपनी बौद्धिक शक्ति का इच्छानुसार विस्तार कर सकता है और अपनी बुद्धि को विषय से निर्लिप्त रखने में समर्थ होता है। जो व्यक्ति चक्रेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी की उपासना-आराधना करता है, उसे वह महिमा-सिद्धि प्रदान करती है। साथ ही, योगमार्ग में होनेवाले क्लेशों का भेदन भी यही करती है। इस सन्दर्भ में विशेष ज्ञातव्य के लिए अमृतानन्द योगी की दीपिका (टीका) से संवलित ‘योगिनीहृदय’ नामक तन्त्रागम का अवलोकन और अनुमनन करना चाहिए।)

प्रसिद्ध तन्त्राचार्य महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज कहते हैं कि शिव और शक्ति में भिन्नता नहीं है। दोनों में एकमेकता है- ‘शिव शक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः।’ महाशक्ति के प्राधान्य को अङ्गीकार कर अमावास्या की ओर जो उनकी स्फूर्ति होती है, वही काली-रूप से तथा जो पूर्णिमा की ओर स्फूर्ति होती है, वही षोडशी, त्रिपुरसुन्दरी या श्रीविद्या के रूप से

साधक-समाज में परिचित होती है। (द्र० 'तान्त्रिक वाङ्मय में शक्ति दृष्टि', शक्ति-साधना)

आदि शंकराचार्य त्रिपुरसुन्दरी के अन्यतम उपासकों में अनन्य थे। म० गोपीनाथ कविराज के अनुसार, शंकराचार्य ने जो अनेक शक्ति-स्तोत्रों की रचना की है, उनमें त्रिपुरसुन्दरी मानस-पूजा तथा 'त्रिपुरसुन्दरी वेदपाद'। ज्ञातव्य है, आचार्य शंकर अद्वैतवादी होते हुए भी व्यवहार-भूमि में देवों की उपासना और उसकी सार्थकता को दृढतापूर्वक अंगीकार करते थे। कहते हैं, लोकशिक्षा के लिए वह स्वयं भी वैसा आचरण करते थे। इसलिए, उनकी रचनावली में विष्णु, शिव, शक्ति आदि अनेक देव-देवियों के विभिन्न और विविध स्तोत्र दृष्टिगत होते हैं। अवश्य ही, इनमें बहुतेरे स्तोत्र सम्भवतः परवर्ती शंकरों के रचे हैं, पर ये आदिशंकर पर ही आरोपित हैं। यह निश्चय ही, एक अनुसन्धेय विषय है। मान्यश्री कविराजजी ने शंकर के नाम से जुड़े होने के कारण ही उन्हें अपनी स्तोत्र सूची में समाविष्ट किया है।

सच पूछिए तो देवी त्रिपुरसुन्दरी भारतीय शाक्तागम में एक रहस्यमयी देवी के रूप में वर्णित है। विभिन्न तन्त्रग्रन्थों में इस देवी की रहस्यात्मकता के अनेक आयाम उपलब्ध होते हैं। 'वरिवस्यारहस्य' 'त्रिपुरारहस्य' 'योगिनीहृदय आदि तन्त्र-ग्रन्थों में इस देवी की व्यापक चर्चा की गई है। श्रीचक्र में इस देवी का यदि निवास है, तो श्रीविद्या इस देवी का पर्याय है। इस देवी के सौन्दर्य का वर्णन 'श्रीदुर्गामानस-पूजा' ('दुर्गासप्तशती गीता प्रेस (संस्करण) में अतिशय अपूर्वता के साथ किया गया है। इसी प्रकार, शंकराचार्य-रचित 'त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्र' में वर्णित त्रिपुरसुन्दरी की मोहक सुन्दरता सौन्दर्यशास्त्र के अध्येताओं के लिए बहुमूल्य शोध अध्ययन का विषय है। आचार्य शंकर ने 'त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्र' में कुल आठ ललित श्लोक 'पृथ्वी' छन्द में उपन्यस्त किये हैं। इनमें चित्रित इस देवी के आंगिक सौष्टव की मोहकता जहाँ हृदय में सहसा आवर्जित करनेवाली

है, वहीं इसकी महिमामयी अद्वैतवाद के समर्थक आचार्य शंकर की रसज्ञता इन आपतितः रमणीय और रसपेशल श्लोकों में सांगीतिक नाद-सौष्टव के साथ मधुमयी बिम्बविधायिनी भाषा में उच्छलित हुई है। निदर्शनार्थ इस स्तोत्र के प्रारम्भिक दो श्लोक यहाँ उपस्थापित हैं:

कदम्बवनचारिणीं मुनिकदम्बकादम्बिनीं
नितम्बजितभूधरां सुरनितम्बिनीसेविताम्।
नवाम्बुरुहलोचनामभिनवाम्बुदश्यामलां
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये॥१॥
कदम्बवनवासिनीं कनकवल्लकीधारिणीं
महार्हमणिहारिणीं मुखसमुल्लसद्धारुणीम्।
दयाविश्वकारिणीं विशदलोचनीं चारिणीं
त्रिलोचनकुटुम्बिनीं त्रिपुरसुन्दरीमाश्रये॥२॥

अर्थात् १. मैं भगवती त्रिपुरसुन्दरी की शरण गहता हूँ, जो कदम्ब-वन में विचरण करती है, मुनि-समूह के लिए कृपा बरसानेवाली कादम्बिनी (मेघपंक्ति) के समान है, जिसके मनोज्ञनितम्ब के सौष्टव से पर्वत भी पराजित है, जो देव-रमणियों द्वारा सेवित है, जिसकी आँखें नव-विकसित कमल-जैसी हैं, जो नये मेघ-जैसी श्यामलांगी है और जो शिव की प्रिया पत्नी है।

२. मैं भगवती त्रिपुरसुन्दरी की शरण गहता हूँ, जो कदम्ब-वन में रहती है, स्वर्णमयी वीणा धारण करती है, बहुमूल्य मणि की माला पहनती है जिसका मुख वारुणी के सेवन से समुल्लसित है, जो दया का वैभव लुटाती है, जिसकी आँखें चमकती रहती हैं, जो प्रकृत्या विचरणशील है या विभिन्न चारियों में नर्तनशील है और जो शिव की प्रिया पत्नी है।

वस्तुतः देवी त्रिपुरसुन्दरी 'देवीभागवत' में वर्णित भगवती के जितने रूप हैं, सबकी बीजरूपा है, जिसकी उपासना से साधक अमृत-लोक में शाश्वत्प्रतिष्ठ हो जाता है।



३७, भा. स्टेट बैंक ऑफिसर्स कॉलोनी
काली-मन्दिर मार्ग, हनुमाननगर

b b

सन्तन में रैदास सन्त हैं

○ डा० एस.एन.पी. सिन्हा

b b

भारत की पवित्र भूमि पर सूफी, सन्तों एवं महापुरुषों द्वारा प्रज्वलित ज्ञान ज्योति से हमारी संस्कृति सदा आलोकित होती रही है। हमारे इतिहास का मध्यकाल इस मायने विशेष महत्त्व रखता है कि इस युग में अनेक सन्त भक्त तथा सूफी, सन्त एवं कवि हुए इन सभी की, चाहे वे हिन्दु-धर्म के अनुयायी हों या इसलाम

धर्म के, निर्गुण ब्रह्म के समर्थक हों या सगुण ब्रह्म के उनमें कुछ समान विशेषताएँ थीं। इन सभी ने रुढ़िग्रस्त संकुचित समाज को मुक्त आकाश देने की विराट् चेष्टा की। हृदय की उदारता और आचरण की पवित्रता इन सभी के चिन्तन-केन्द्र में थी। इनकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह थी कि सभी में जनता की भाषा में जनता के साथ सीधे संवाद स्थापित किये गये थे। शायद इसलिए उनके जीवन को गहरे प्रभावित कर सके। इन सबके विचारों के केन्द्र में हमेशा एक बात रही- 'एकैव मानुषी जातिः'। सन्त शिरोमणि रविदास भी इसी उदार एवं सुधारवादी आन्दोलन की देन थे।

सन्त रविदास या रैदास भारत की सन्त परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। संवत् १४३३ में माघ पूर्णिमा को रविवार के दिन तथाकथित 'अछूत घर में एक ऐसे 'रवि' का उदय हुआ, जिनके तेज से जन्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था के अन्धकार का नाश हुआ, जिनके पवित्र-चरित के सम्मुख रूढ़वादियों को बार-बार झुकना होना पड़ा और जिसने सरल भक्ति की ऐसी सुन्दर सरिता प्रवाहित की, जिसमें डुबकी लगाने से न केवल दलितों और पतितों को ही अनिर्वर्णीय शान्ति मिली बल्कि सम्पूर्ण समाज उस सरिता की धार से पवित्र हो चला। सन्त रविदास की वाणी में सात्त्विक भक्ति का प्रवाह मुख्य रूप से पाया जाता है।

संवत् १३७५ विक्रमी से लेकर संवत् १८०० (सन् १३१८ से १६४३) तक लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष के समय को हिन्दी साहित्य में भक्ति काल के नाम से जाना जाता है। समालोचकों ने इसे हिन्दी साहित्य का स्वर्णिम काल कहा है। भक्तिकाल में दो धाराएँ प्रवाहित हुईं। एक धारा के वे कवि हुए, जिन्होंने अपने आराध्य

देव का स्मरण साकार मानकर अपने काव्य की रचना की, दूसरी धारा के वे सन्त कवि हुए जिन्होंने ईश्वर के निर्गुण स्वरूप को आधार मानकर काव्य सर्जन किया।

निर्गुण सन्तकवि ने किसी लौकिक महापुरुष को नहीं, बल्कि सर्वव्यापी; सर्व-शक्तिमान् सर्वगुण सम्पन्न, निराकार, निर्विकार, अविनाशी को अपना इष्ट मानकर सत्य की खोज की और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। ऐसे ही प्रमुख

सन्तकवियों में कबीरदास और गुरुनानक देव की भाँति सन्त रविदास का भी विशेष स्थान है।

सन्त रैदास ने निःसंकोच भाव से यह

स्वीकार किया है कि उनका जन्म नीच कर्म करने वाले चमार कुल में हुआ था- यह उनके साखियों, पदों और दोहों से स्पष्ट है। उन्होंने यह भी कहा- “नीचे से प्रभु ऊँच किया है”। यह परम्परा में भी सिद्ध वचन है- कोई भी वर्ण का साधारण से साधारण मनुष्य स्वधर्म- यानी सत्-प्रयास सत्-कर्म सद्भक्ति से परमात्मा स्वरूप उन्नत शिखर एवं श्रेष्ठता को प्राप्त कर लेता है।

भगवान् व्यास ने भी महाभारत में (युधिष्ठिर और नहुष संवाद) कहा है- “जो शूद्र आचरण में श्रेष्ठ हैं उसे शूद्र नहीं मानना चाहिए और जो ब्राह्मण भी ब्राह्मणोचित कर्मों से निरत रहते हैं, उसे ब्राह्मण नहीं मानना चाहिए।

शूद्रे चैतद् भवेत्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।

न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः।।८।।

पद्मपुराण में भी वर्णन है-
चाण्डालोऽपि मुनेः श्रेष्ठो
विष्णुभक्तिपरायणः
विष्णुभक्तिविहीनस्तु द्विजोऽपि
श्वपचोऽधमः।

‘हरिभक्ति मे लीन रहनेवाला चाण्डाल भी मुनि से श्रेष्ठ है और इस भक्ति से रहित ब्राह्मण चाण्डाल से भी अधम है।

ऐसा उद्धरण श्रीमद्भागवत, महाभारत एवं पुराणों में अनेक जगहों में वर्णित है-

इससे सिद्ध होता है- कर्मों की प्रधानता ही श्रेष्ठ है। मनुष्य सत्कर्म साधना से श्रेय और सिद्धि प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण ने अर्जुन से कहा है-

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः

संसिद्धिं लभते नरः।

स्वकर्मनिरतः सिद्धिं

यथा विन्दति तच्छृणु।।४५।।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।४६।।

(१८/४५-४६) गीता।

अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में सत् प्रयासों से तत्पर रहता हुआ भगवत्-प्राप्ति रूप परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। वह कैसे पालता है, यह तू मुझ से सुन- जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा- मन, वाणी और शरीर से सत्-प्रयास कर निष्काम भाव से सेवा

कर मनुष्य परम सिद्धि को पा लेता है। भगवान् रामकृष्ण परमहंस ने तो यहाँ तक कहा है और सिद्ध कर दिखाया था कि जीवसेवा शिवसेवा है। निष्काम भाव से अपना स्वधर्म पालन कुशलता पूर्वक करना ही सच्ची भक्ति है और सत् चित् आनन्द की भी अनुभूति प्राप्त की जा सकती है वही ईश्वरीय पूजा है।

नीच वर्ण में उत्पन्न होने पर भी अपने स्वाभाविक कर्म साधनोपरान्त महापुरुषों की श्रेणी में पंक्तिबद्ध हो जाते हैं। जैसे विदुर, कबीर, रैदास आदि।

मनुष्य अपने विवेक विचार सत्संग, स्वाध्याय स्वकर्म, साधना, सत् प्रयास और समर्पण भाव द्वारा अपने में स्वच्छता, निर्मलता पवित्रता प्राप्त कर मनुष्य जन्म का ध्येय सिद्ध कर लेता है। कबीर की तरह (चादर बुनना) सन्त रैदास भी अपने स्वाभाविक कर्म साधना (जूता सीना) के द्वारा उस परब्रह्म को प्राप्त कर चुके थे, जिसके पाने के बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता है। इस परमधाम को उन्होंने बेगमपुर की संज्ञा दी है।



अब हम खूब वतन घर पाया,
ऊँहा खैर सदा मेरे भाई॥

सन्त रविदास के जन्म के बारे में इतिहासकार में मतान्तर है। पर उनके जन्मकाल के बारे में गुरुगोबिन्द सिंह के समकालीन सन्त करमदास द्वारा रचित 'रविदास महिमा' में निम्न दोहा उद्धृत है-

चौदह सौ तैंतीस की माघ सुदी पंदासा।
दुखियों के कल्याण हित प्रकटे श्री रविदासा॥

उनकी जन्मभूमि के बारे में प्रायः सभी विद्वान् एकमत हैं- इनका जन्म काशी नगर के समीप मांडूर नामक ग्राम में हुआ था। यह बनारस छावनी से दो मील दूर ग्रांडट्रक रोड पर स्थित है।

उकी माँ का नाम करमा देवी और पिता का नाम राघव (रघु) था। ये चर्मकारी का पुश्तैनी धंधा करते थे। इन्होंने अपने कई पदों में अपने को चमार कहा है-

कह रैदास खलासा चमारा।
ऐसी मेरी जाति विख्यात चमारा॥



सन्त रैदास को सन्त रविदास के नाम से भी जाना जाता है। सदगुरु रामानन्द को बारह शिष्यों में रैदास भी हैं। 'हिन्दी साहित्य में रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ऐसा जान पड़ता है कि ये कवीर के बहुत पीछे स्वामी रामानन्द के शिष्य हुए क्योंकि अपने एक पद में इन्होंने कबीर और सेनानाई के तरने का उल्लेख किया है।

नामदेव कबीर विलोचन साधना सेन तरे।
कह रविदास, सुनहरे सन्तहु हरि जिऊ ने सबहि तरे ये स्वामी रामानन्द के ही शिष्य थे इन निम्न दोहे से पता चलता है-

रामानंद मोहि गुरु मिल्यौ पाया ब्रह्म विस्वासा।
रामनाम तभी रस पियो, रविदासहि भया खलासा।

सन्त रविदासजी का मन अपने पुश्तैनी धंधा में नहीं लगता था। वे सदैव साधु महात्माओं की सेवा में लगे रहते थे। उन्हें सांसारिकता से विमुख देख गृहस्थ जीवन में बाँधने के लिए उनका विवाह बाल्यकाल में ही कर दिया गया और वह भी अबोध बालिका के साथ। उनका दिनचर्या यथावत् बनी रही। तो उन्हें घर से ही अलग कर दिया गया। वे कुटिया बनाकर रहने लगे यहाँ वे साधुसेवा और भक्तिमय जीवन व्यतीत करने लगे और वे इकतारा लेकर अपने रचित पद साखियाँ, दोहे लोगों को गाकर सुनाने लगे। उनकी वाणी में माधुर्य और पदों में अलौकिक आकर्षण के कारण जन जन को प्रभावित करता था और उनकी ज्ञान और भक्ति की ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

आचार्य चतुरसेन अपनी पुस्तक हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास में सन्त रविदास की वाणी के बारे में लिखा है कि- "जितने भी सन्त कवि उन सब में रविदासजी के पद सरस एवं भाव पूर्ण है।"

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रविदास की जीवन शैली का चित्रण करते हुए अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य' में लिखा है- "अनाडम्बर, सहज शैली और निरीह आत्मसमर्पण के क्षेत्र में रविदास के साथ कम ही सन्तों की तुलना की जा सकती है।"

उनकी विचारधारा का विश्लेषण करने पर पता चलता है उनके राम सगुण राम न होकर निर्गुण, निराकार, व्यापक, सर्वव्यापक, निश्चल, अगोचर, अजर, निर्विकार अविनाशी और सन्त कबीरदास के राम की भाँति घट-घट बासी हैं-

रविदास हमारा रामजी दशरथ करी सुत नाहिं।
राम हमउ महिं रमि रह्या विसव कटुंबह माहिं॥

“परम पारस गुरु भेटिया, पूरब लिखत
लिलाट” रविदास यह स्वीकार किया है, उनका
जन्म नीच कर्म करनेवाले चमार कुल में हुआ
था।

जाती ओछी करम भी ओछा

ओछा कसब हमारा।

नीचे से प्रभु ऊँचे कियो है

कह रविदास चमारा।

उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया सत्कर्मों
और सद्गुणों को अपनाकर मनुष्य
महान बन सकता है। सन्त रैदास की
दृष्टि में राम-रहीम में कोई अन्तर
नहीं है। काशी कावा में अन्तर नहीं
है-

**रविदास हमारो राम जोई
सोई है रहमानी।
काशी काबा जानो यही
दोनों एक समानी।**

पूरे विश्व को एक सूत्र में पिरोने हेतु
सन्त रैदास सचेष्ट थे। प्रेम, भाईचारा, सहयोग,
परस्पर सहयोग भाव को मागे अपनाने का कहा।
वे कहते हैं- वेद एवं कुरान एक ही है। कृष्ण
एवं रहीम भी एक ही हैं-

**कृष्ण करीम राम हरि राघव
जब गल एक न पेखा।
वेद कतेव कुरान पुरानन,
सहज एक नहीं देख।**

सन्त रविदास का कहना है- हम सब
एक पिता के पुत्र हैं तो फिर यह भेद-भाव
कैसा- सब मनुष्य एक जाति के हैं और समान हैं।

जनम जात मत पूछिये का जात का पात।
रविदास पूत सब प्रभु के, कोई न जात-कुजात।
जाति पाति के फेर महि, उरझि कहई सबलोग।
मनुष्यता को खात हई, रविदास जात का राग।
रविदास मानुश जुड़ सके, जो लौं जात न जात।

सन्त रविदास जिस समाजवाद की कल्पना
की थी, उसका स्वरूप इस प्रकार था-

**ऐसा चाहो राज मैं जहाँ मिले सबन को अन्न।
छोट बड़ौ सभ सम बसै रविदास रहे प्रसन्न॥**

इस तरह सन्त रविदास साम्प्रदायिक
सद्भाव एवं सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे।

मानवता के चितरे आदि देश प्रेमी रविदास
को मुसलमान शासकों की गुलामी
एवं दमनात्मक कार्य के विरोधी थे।
वे स्वतंत्रता आन्दोलन के सूत्र धार
और क्रान्ति वीर थे। उन्होंने अपनी
सखियों द्वारा आह्वान किया था-

**पराधीनता पाप है
जानि लेहु रे मीत।
रविदास पराधीन से
कौन करे है प्रीत॥**

रविदास अद्वैतवादी थे। वे ब्रह्म
और जीवात्मा में कोई तात्त्विक भेद नहीं मानते।
अगर उनके काव्य का सूक्ष्म अवलोकन करें तो
पायेगें कि ब्रह्म और जीव में उतना ही अंतर है,
जितना सोने और सोने से बना आभूषण में जल
और जल से उठी लहर में और सूत और सूत से
बने कपड़े में। उनके अनुसार आदमी का धर्म
और कर्म दोनों एक है। सत्कर्म और सदाचार ही
धर्म है।

सन्त रविदास समाज में पनप रही विभिन्न
बुराईयों के कट्टर विरोधी थे; जिन्होंने अपने
आत्मचित्तन और ईश्वर भक्ति के द्वारा यह सिद्ध
किया कि आडम्बरपूर्ण जीवन अपनाकर साधु
सन्त सत्य तक नहीं पहुँच सकता और ढोंगी
महात्माओं को फटकारा था-



माथे तिलक हाथ जप माला,
जग ठगन कू स्वांग बनाया।
मारग छाड़ कुमारग डहकै,
सांची प्रीत बिनु राम न पाया।

उनकी दृष्टि में साधु है-

रविदास सोई साधु भलो जो निहकपट निरपच्छ।
क्षमासील अरू सरल मना, बाहर भीतर स्वच्छ॥

सन्त रविदासजी ने साधना के सहारे भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करनेवाले भक्त को 'सुहागिन' कहा है। साधनाहीन भक्त की आत्मा दुखी और 'दुहागिन' बनी रहती है'

दुखी दुहागिन होई पिय बिना,
नेह तिरति करी सवनिया।
सुख को सार सुहागिनी जनै,
तन मन देय अंतर बहि आवै॥

सच्चा भक्त तो अपने आराध्य के प्रेम मदिरालय से प्याले पर प्याले पीकर अलौकिक प्रेम में मग्न रहता है, सतत् ब्रह्मानुभूति में लीन रहता है। सुन्न की भट्ठी वाले प्रेम प्याले की ओर रविदास का ध्यान सदा लगा रहता है।



देहु कलाली एक प्याला,
ऐसा अवधूत मैं मतवाला
सहज सुन्न में भाठी सखे,
पावै रविदास गुरुमुख देखे॥

सन्त रविदास अपने हरिजी के उस परमतत्त्व का प्राप्त कर चुके थे, जहाँ जीव को ब्रह्म की उपलब्धि मिल जाती है। उस परमधाम को उन्होंने 'बेगमपुर' की संज्ञा दी है- वहाँ आनन्द ही आनन्द है, वहाँ प्रेमसागर है- वहाँ प्रशान्ति देती है। सत्चित आनन्द-स्वरूप परमधाम का रविदास यों व्यक्त किया है-

अब हम खूब वतन घर पाया,
ऊँचा खेड़ा सदा मन भया।

वेगमपुर शहर का नाम,
फिकर अंदेशा नहिं तेहि ग्राम।
कहे रविदास खलास चमारा,
जो उस सहर सो मीत हमारा।

रविदासजी का सम्पूर्ण चराचर हरिमय था- सबमें हरि है हरि में सब है, हरि अपना जिन जान। साखी नहीं और कोई दूसर जानन हार सयाना॥ थावर जंगम कीट पतंगा पूरि रहयौ हरि राई।

सन्त रविदासजी का अभ्युदय भक्तिकाल में हुआ था। यह युग धार्मिक पुर्नजागरण कहलाता है। इस अवधि में धार्मिक, आध्यात्मिक और समाजिक क्रान्ति भी हुई। जबरन धर्म परिवर्तन, धार्मिक कट्टरता और आडम्बर, ऊँच नीच, जाति-पाति भेद, साम्प्रदायिक दुर्भावना, घृणा, वैमनस्य का वातावरण था। पूरे समाज में अव्यवस्था और निराशा-हतासा था। समाजिक और धार्मिक वातावरण दूषित, अनिश्चितता और अंधकारमय था। इसके विरुद्ध सूफी सन्तों और कवियों ने कलम उठायी इसके विरुद्ध आवाज उठायी। सारे भारत में इसके विरुद्ध आवाज उठी। क्रान्तिकारी परिवर्तन की गूँज दक्षिण भारत में सन्त रामानुज, उड़ीसा में जयदेव, बंगाल में चैतन्य महाप्रभु, उत्तर भारत में सदगुरु रामानन्द, कबीर, तुलसी, रविदास, दादू, सदाना कसाई, महाराष्ट्र में सन्त नामदेव, सन्त तुकाराम और पंजाब में गुरुनानक का नाम उल्लेखनीय है। इन कवियों ने अपने प्रवचनों, भजनों, कविताओं के माध्यम से व्याप्त नैराश्यपूर्ण वातावरण को दूर किया। सत्यमार्ग एवं प्रकाशमार्ग दिखाया। कबीर

और रविदास दोनों काशी के रहनेवाले थे। दोनों विलक्षण सन्त थे और इनके प्रयास भी अभूतपूर्व रहा है। दोनों का आपस में मिलने का कई प्रमाण भी हैं- काशी से कबीर चले, माहुर से रविदास कबीर की भाषा तीक्ष्ण और चुभनेवाली है। सन्त रविदास की संयत है, निस्पृह, निष्काम वाणी है तथागत भगवान् बुद्ध के बाद इन दोनों सन्तों ने अपने कवित्व शक्ति से क्रान्तिकारी परिवर्तन का प्रयास अद्भुत एवं विलक्षण किया। भारत के दार्शनिक स्मृतिशेष राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने कहा था “किसी देश का निर्माण न तो उस देश के नेता करते हैं, न सेना, न राजकीय व्यवस्था, न राजनेता लोग परन्तु यह क्रान्तिकारी परिवर्तन उस देश के सन्त महात्मा करते हैं- ऐसे सन्तों में कबीर और सन्त उल्लेखनीय है। इनके प्रयासों से ही राष्ट्रीय एकता और भावनात्मक एकता का वातावरण बन सका।

उनके वाणी वचन सर्वकालिक सर्वदेशीय व्यापक है, आज भी प्रासंगिक है, आगे भी आनेवाले युग के लिए भी प्रकाश-स्तंभ है और युगों तक रहेगा। इन सबने मनुष्य मनुष्य के बीच खड़ा दीवारों को ध्वस्त किया, खाईयों को पाटा और समता सम्मान सद्भाव, सजगता और सद्बोध से संसार को सुसज्जित किया।

धार्मिक असहिष्णुता, कट्टरता, वातावरण के विरुद्ध सन्त रविदास दोनों समुदाय हिन्दू और मुसलमानों को समझाया कि भगवान् मंदिर-मस्जिद में नहीं बल्कि इंसान के दिलों में रहते हैं। मस्जिद सौ घिन नहीं, मंदिर सो नहीं प्यार, दो अल्लाह-राम नहीं, कह रविदास चमार॥ रविदास हमारा रामजोई, सोई है रहमान काबा-काशी यही दोनों एक समान



मुसलमान से दोस्ती, हिन्दुअन सोकर प्रीत।
रविदास जोतिसमराय का सभ है अपन मीत।

उन्होंने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का भी जोरदार खंडन किया। उनके अनुसार जन्म से न कोई छोटा और न बड़ा। उसका कर्म महान् है। और सत्कर्म द्वारा अपने आप को सर्वोच्च तक पहुँचा सकता है। राम-कृष्ण-बुद्ध की श्रेणी में पंक्तिबद्ध हो सकता है।

बाभण, छतरी, बैस, सूद रविदास जन्म ते नाहिं।
जा चाहइ सुबरन करु, पावई करमन माहि।

सन्त रविदासजी का व्यक्तित्व महान्, विलक्षण व प्रभावशाली था। इनको आकर्षक, बहुमुखी प्रतिमा से शूद्रों के अतिरिक्त ऊँची जाति वाले ब्राह्मण भी प्रभावित हुए थे और उनका महत्त्व स्वीकारा।

चर्मकार घर में जन्म लेकर पूर्व जन्म के सुसंस्कार के कारण गुरुकृपा से इन्हें हरिभक्ति रूपी पारसमणि की उपलब्धि हुई। सत्कर्मों द्वारा उन्हें प्रभु तक पहुँचा दिया। सन्त रविदास भी जूता सीते जाते और भगवान् के भजन मस्त होकर समर्पण भाव से गाते रहते थे। वे कहते थे कि हे जीव, यदि तू हरि का भजन नहीं करेगा तो तुझे सच्चा सुख प्राप्त नहीं होगा। सद्गति प्राप्त नहीं होगी वे हमेशा गाते थे-

प्रभुजी तुम चंदन हम पानी।

जाकी अंग-अंग बास समानी॥

प्रभुजी तू घन, बन हम मोरा।

जइसे चितवत चंद चकोरा॥

प्रभु जी तू दीपक हम बाती।

जाकि जोति बरै दिन-राती॥

प्रभुजी तू स्वामी हम दासा।

अइसी भगती करै नै दासा॥

यह अमृतमयी वाणी न जाने कितने के हृदय में प्रवाहित हुई और उन्हें ब्रह्मानन्द अनुभूति प्राप्त हुई और यह धारा सदियों जनमानस के भगत में प्लावित करती रहेगी।

सन्त रविदासजी ने अपने जीवन काल में कितना काव्य सृजन किया, वह अभी तक समय के गर्भ में छिपा है। सिखों के पाचवें गुरु अर्जुनदेवजी द्वारा संपादित गुरुग्रंथसाहिब जिसका संवर्द्धन कार्य संवत् १६६२ में सम्पन्न हुआ था। उसमें रविदास को ३१ पद संकलित है।

मुंशीराम विद्यावाचस्पति ने अपनी पुस्तक 'महर्षि रविदास ज्योति' में उनके ८३ पद और १८ साखियाँ संकलित की हैं। उनके पदों एवं साखियों का सबसे बड़ी प्रामाणिक पुस्तक है 'रविदास-दर्शन'। आचार्य पृथ्वी सिंह आजाद द्वारा प्रणीत इस ग्रंथ में सन्त रविदास की १८२ साखियाँ संकलित हैं।

सन्त रविदास ने विविध धर्म, संप्रदायों तथा मत-वादा के तथ्य एवं प्रभाव को आत्मसात् किया, पर उन्होंने स्वतंत्र ढंग से सत्य को सामने रख मानव धर्म अथवा विश्वधर्म को अपने कृति द्वारा लोगों के सामने रखा। सत्य स्थापित करने का सतत प्रयास करते रहे।

सन्त रविदास की महानता इस बात से भी आँकी जा सकती है कि भक्त शिरोमणि, मीराबाई ने उनको गुरु स्वीकार किया था। मीरा के अनेक पद इसके साक्षी हैं। यथा-

गुरु मिलया रैदासजी,
होना ज्ञान की गुटकी।
चोट लगी निज नाम हरि की,
म्हारे हिवड़े खटकी॥

अपनी शिष्या के आमंत्रण पर सन्त रविदासजी अपने अंतिम समय चित्तौड़गढ़ आ गये थे। यह पर लगभग १०५ वर्ष की आयु में उनका निर्वाण हुआ।

चित्तौड़गढ़ में मीरा-मंदिर के सामने बनी रविदास छतरी और उसमें रखे, उनके पदचिन्ह भी रविदास की याद दिलाते हैं- गुरु-शिष्य की अटूट श्रद्धा भक्ति का मार्ग गुरु रविदास मानवीय मूल्यों के स्थापित करनेवाले सन्त कवि थे। उनके पद एवं साखियों में सत्य, यतार्थ की अनुभूति-आनन्दानुभूति, लोक धर्म की स्थापना-सत्य धर्म की स्थापना एवं युग निर्माण होता है। उनके दर्शन सार्वकालिक हैं- युग-युग तक प्रासांगिक रहेगा।

सन्त रविदास की वाणी में आध्यात्मिक और बौद्धिक क्रांति थी। उन्होंने कहा था कि मैं तो पूरी तरह से अपूज्य भी पूज्य हो गया'।

सन्त रैदास ने अपनी भक्ति और वाणी से भारतीय जन मानस में निर्गुण ज्ञान राशि की अलौकिक अखंड दीप शिखा प्रज्वलित की जो हर काल परिस्थिति में जलने की क्षमता रखती है।

तभी तो कबीर ने कहा था- संतन में रैदास संत हैं।

उन्होंने कहा था- "एक ज्योति से गजब सभ उपजे, तउ ऊँच-नीच कस माना।"



बी. ६२, पी० सी० कॉलोनी,
लोहियानगर, पटना-२०

bb

तिथियों का प्राचीन वर्णन

○आचार्य राजनाथ झा

bb

भारतीय आर्ष ज्ञान की परम्परा में स्रोत के रूप में वेदों की मान्यता स्थापित है। वेद ज्ञान का अक्षय भाण्डार है। यह अनादि है; अतः अपौरुषेय है। इसकी चार संहिताओं ऋक्, साम, यजुः एवं अथर्ववेद के साथ ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्-ग्रन्थों को भी ब्रह्म के निःश्वास से उद्भूत माना गया है। अतः मन्त्र और उसके ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद कहा गया है-

‘मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्’।

वेद ज्ञान का अक्षय स्रोत है। हमारी परम्परा मानती है कि प्राचीन ऋषियों ने इन मन्त्रों का दर्शन किया। वे स्रष्टा नहीं, द्रष्टा कहलाये। इन मन्त्रों के रूप में उन्होंने चराचर जगत् का दर्शन किया। प्रकृति को गहराई से देखा। चन्द्रमा, सूर्य, तारा एवं ग्रहों का उदय अस्त होते देखा। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि रात को ये तारे कहाँ से आते हैं? दिन को कहाँ चले जाते हैं?

इसी प्रकृति निरीक्षण के क्रम में उन्होंने अहोरात्र और संवत्सर का अध्ययन किया। सूर्य के उगने से अहोरात्र और ऋतुसम्पात से संवत्सर का अनुभव किया और उसकी गणना की।

इस तरह वेदों में काल की एक इकाई के रूप में तिथि का उल्लेख बार बार हुआ है।

हमारा वैदिक समाज यज्ञपरक था। यज्ञ के लिए काल-निर्धारण अनिवार्य था। इसलिए ज्योतिष शास्त्र को वेदांग के रूप में प्रतिष्ठा मिली। तभी तो भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है:-

वेदास्तावद् यज्ञकर्मप्रवृत्ता

यज्ञा प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण ।

शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्यात्
वेदांगत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात्।

वेद यज्ञ करने के लिए प्रवृत्त करते हैं; यज्ञ समय पर आश्रित है। सही समय में किया गया यज्ञादि कर्म सफल एवं गलत समय में किया गया यज्ञादि कर्म विफल होते हैं। यज्ञादि कर्म सफल एवं गलत समय में यज्ञादि कर्म करने के लिए समय की गणना करना परमावश्यक है।

समय में भी सर्वप्रथम तिथि की गणना होती है। वेदों में भी तिथि की चर्चा अनेक स्थलों पर देखने को मिलता है।

अहोरात्र की गणना में सूर्य से प्रतिभासित दिन की गणना अव्यावहारिक थी; क्योंकि निरी आँखों से देखकर कोई दो दिनों में अन्तर जान पा

दर्श, कुहू, राका,
पूर्णिमा, सिनीवाली आदि शब्द
अमावास्या एवं पूर्णिमा के विभिन्न
रूपों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। साथ ही,
चन्द्रमा की कला के आधार पर ज्योतिष
शास्त्र में प्रतिपदा से चतुर्दशी तक
तिथियों का नामकरण किया गया
है। इस गणना की प्राचीनता के
साक्ष्य यहाँ प्रस्तुत हैं।

नहीं सकता था किन्तु रात्रि में चन्द्रमा को देखकर उसकी शृंगोन्नति देखकर गणना व्यावहारिक थी; इसलिए संक्रान्ति की गणना की अपेक्षा तिथियों की चर्चा वेदों में प्रचुर मात्रा में मिलती है।

चन्द्रमा प्रतिदिन राशि चक्र में पश्चिम से पूर्वाभिमुख $13/10/55$ अंश जाता है और सूर्य $56/1$ कला गतिशील रहते हैं, इसी कारण से चन्द्रमा प्रतिदिन सूर्य से $12/11/49$ कला पूर्व की ओर आगे चलते हैं। चन्द्रमा की इस प्रतिदिन आगे की गति से एक-एक तिथि होती है।

चन्द्रमा की 16 वाँ भाग कलावृद्धि भाग का नाम शुक्ल पक्ष और न्यून का नाम कृष्णपक्ष है। चन्द्रमा जब सूर्य से 120° अंश अर्थात् छः राशि के अन्तर पर होते हैं, तो पूर्णमासी तिथि होती है। एवं पूर्व रीति से चन्द्रमा जब 120° से 12 अंश 11 कला 17 विकला पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर गमन करके 60 अंश पहुँचने पर कृष्णाष्टमी तिथि एवं क्रमशः सूर्य से निकट होने पर एक स्थान में आ जाने पर अमावस्या तिथि होती है, पुनः क्रम से जब चन्द्रमा सूर्य जैसे-जैसे दूर होते जायेंगे वैसे-वैसे चन्द्रकला बढ़ती जायेगी एवं बढ़ते-बढ़ते हुए जब वह 120 अंश पर पहुँचेंगे, तो पूर्णमासी होती है।

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः।

ऐतरेय ब्राह्मण : ३२।१०।

चन्द्रमा के उदयान्तर अर्थात् एक उदय से दूसरे उदय पर्यन्त का समय तिथि कहलाती है।

चन्द्रमा वै पंचदशः।

एष हि पंचदश्यामवक्षीयते पंचदश्यामापूर्यते।।

तैत्तिरीय ब्राह्मण : १।५।१०

चन्द्रमा एक ही है, यही चन्द्रमा कृष्णपक्ष में क्रमशः 15 दिन घटता है एवं पुनः शुक्लपक्ष में 15 दिन क्रमशः बढ़ता है, चन्द्रमा के अंश

ऋण-धन होने का नाम ही कृष्णपक्ष एवं शुक्लपक्ष है।

दृष्टिगोचर चन्द्रमा के आधार पर अहोरात्र और मास गणना में पूर्णचन्द्र और शून्यचन्द्र की दो स्थितियाँ सबसे स्पष्ट थी; अतः वैदिक वाङ्मय में पूर्णिमा और अमावास्या इन दोनों तिथियों का विशेष वर्णन प्राप्त होता है। इन दोनों तिथियों पर आधारित यागदर्शपौर्णमास वैदिक काल में पर्याप्त प्रचलित थे।

इस आलेख में प्रमुख रूप से पूर्णिमा एवं अमावास्या तिथियों का विवेचन वैदिक वाङ्मय के आधार पर किया जा रहा है।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में अष्टका, उदष्ट, त्रयष्टका तिथियों का भी वर्णन मिलता है-

तस्य व्रातस्य, योऽस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका।।

अथर्ववेद : २५।४

पौर्णमास्यां पूर्वमहर्भवति, व्यष्टकामुत्तरम्
अमावास्यायां पूर्वमहर्भवति उदष्ट उत्तरम्।।
द्वादश पौर्णमास्यः। द्वादशाष्टकाः। द्वादशामावस्याः।

तैत्तिरीय ब्राह्मण : १।८।१०।२

अर्थात् कृष्ण प्रतिपदा से आठवीं तिथि की व्यष्टका तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से आठवीं तिथि को उदष्ट कहते हैं।

सामविधानब्राह्मण ग्रन्थ के (२/६, २/८, ३/३) इन स्थलो पर कृष्णचतुर्दशी, कृष्णपञ्चमी और शुक्ल चतुर्दशी शब्द आये हैं।

वेदों में चन्द्रमा की कला के न्यूनाधिक्य का कारण यह बताया गया है कि देवता उसका प्राशन करते हैं।

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ घ्यायसे पुनः।

वायुः सोमस्य रक्षिता समाना मास आकृतिः।।

ऋग्वेद : १०।८।५

यमादित्या अंशुमाध्यायन्ति यमक्षितमक्षितयः पिबन्ति।।

तैत्तिरीय ब्राह्मण : २।४।१४

हे चन्द्र! मुझे सूर्य की किरणों कृष्णपक्ष में प्राशन करते हैं, एवं पुनः सूर्य की किरणों शुक्लपक्ष में बढ़ती हैं, उसके बाद तुम पुनः तेजस्वी होते हो, वायु सोम के रक्षक है और तुम संवत्सर एवं मासों के कर्ता हो।

नवो नवो भवति जायमानो ह्या केतुरुषसमेत्यग्रे।
भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः॥

ऋग्वेद : १०।८५।१६

जिस प्रकार सूर्य किरणों से चन्द्रमा की कला प्रतिदिन क्रमशः बढ़ती हुई पूर्णमासी को पूरी हो जाती है उसी प्रकार मेरे ऐश्वर्यों को मेरी आयु भर वृद्धि करो।

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्राः अमे मिश्रुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्युः॥

ऋग्वेद : १।१६४।११

एक चक्र अर्थात् संवत्सर में १२ महीने अविचल सनातन हैं और जिसमें सूर्य के पुत्र स्वरूप ३६० अहोरात्र भोग हैं।

अमावास्या और पौर्णमासी तिथि की चर्चा वेदों में मिलती हैं -

तस्य व्रात्यस्य। यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावस्यां चैव
तत्पौर्णमासीं च॥ तस्य व्रात्यस्य यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स
आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः॥

अथर्ववेद : १५।१७।६।१, १५।१८।१, २

उस व्रात्य के अङ्गस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा जब एक स्थान में होते हैं, तब अमावस्या होती है। उस व्रात्य के दाहिनी आँख सूर्य एवं बायीं आँख चन्द्रमा है। पुनः-

चन्द्रमा अमावास्यायामादित्यमनु प्रविशति

आदित्याद्वै चन्द्रमा जायते॥

ऐतरेय ब्राह्मण : ४०।५।

चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य के साथ जब समसूत्रस्थ होता और पुनः उस से अलग होता है।

सोमावास्यायां रात्रिमेतया षोडश्या कलया
सर्वमिदं प्राणभृदनु प्रविश्य ततः प्रातर्जायते॥

बृहदारण्यक : १।४।४।३।२२

एष वै सोमो राजा देवनामन्नं यच्चन्द्रमाः स यत्रैष
एता रात्रिं न पुरस्तान्न पचाद् ददृशे तदिदं
लोकमागच्छति स इहैवापश्चौषधीश्च प्रविशति
स वै देवानां वस्वन्नं ह्येषां तद्येषां रात्रिमिहामावसति
तस्मादमावास्या नाम॥

शतपथ ब्राह्मण : १।६।४।५

यह चन्द्रमा अमावस्या को रात्रि में जो आकाश में नहीं दिखते हैं, उसका कारण यह है कि वह पृथ्वी पर आकर, प्राणी, औषधी वनस्पति इत्यादि में प्रवेश करता है।

सोमावास्यायां रात्रिमेतया षोडश्या कलया

सर्वमिदं प्राण भृदनुविश्य ततः प्रातर्जायते।

शतपथ ब्राह्मण : १।६।४।५

वह चन्द्रमा जिस रात्रि में १६ कलाओं से प्रकाशित होता है, तो सब प्राणियों को सुखप्रद होता है, अर्थात् पौर्णमासी होता है। अमावस्या को दर्श और अमावस्या तथा पूर्णिमा को पर्व कहा गया है। पूर्णिमा की अनुमति और राका तथा अमावस्या को सिनीवाली एवं कुहू भी कहा है। ऋग्वेद संहिता के मण्डल २ में राका और सिनीवाली शब्द देखने को मिलते हैं।

आश्रित्य ताममावास्यां पश्यतः सुसभागतौ।

अन्योन्यं चन्द्रसूर्यो तो यदा तद्दर्शं उच्यते॥

ऐतरेय ब्राह्मण : ३२।१०

जिस तिथि में चन्द्रमा और सूर्य समसूत्रस्थ होते हैं, उसको अमावस्या का “दर्श” कहते हैं।

चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावस्या च पूर्णिमा ।

पर्वाण्येतानि राजेन्द्र! रविसंक्रान्तिरेव च॥

ऐतरेय ब्राह्मण : ३२।१०

चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्य की संक्रान्ति इनका नाम “पर्व” है।

या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिर्योत्तरा सा राका।
या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः।

ऐतरेय ब्राह्मण :३२।१०

चतुर्दशी तिथि से संलग्न पौर्णमासी को अनुमति एवं प्रतिपदायुक्त पौर्णमासी को “राका” कहते हैं। इसी प्रकार चतुर्दशी युक्त अमावस्या को “सिनीवाली” एवं परिवा युक्त अमावस्या को “कुहू” कहते हैं। इसी प्रकार गोपथ ब्राह्मण में भी लिखा है।

क्षयतिथि के सन्दर्भ में वेद में बताये गये हैं कि-

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्रयेकादशावमाः॥

ऐतरेय ब्राह्मण :३२।१०

अर्थात् १ वर्ष में ११ “अवम” एवं दो वर्ष में २२ इसी प्रकार समझना चाहिए यहाँ स्पष्ट रूप से “अवम” शब्द तिथि का वाचक है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्ष के ३६० दिनों की गणना उपलब्ध होती है। यहाँ दिन के लिए अहः शब्द का प्रयोग हुआ है तथा इस संवत्सर को प्रजापति माना गया है।

त्रीणि च वै शतानि षष्टिश्च संवत्सरस्याहानि तावान् संवत्सरः। संवत्सरः प्रजापतिः॥ प्रजापतिर्यज्ञः उपैन् यज्ञो नमति यस्यैवं विद्वान् त्रीणि च शतानि षष्टिं चान्वाह॥

ऐतरेयब्राह्मण-७/७

शतपथब्राह्मण में पूर्णिमा के सन्दर्भ में कहा गया है कि इस दिन देवता चन्द्रमा का आलम्भन कर यज्ञ करते हैं।

असौ वै चन्द्रः पशुस्तं देवाः पौर्णमास्यामालभन्ते।

शतपथब्राह्मण- ६/२/२/१७

प्रायः यही कारण है कि पूर्णिमा को ब्राह्मण माना गया है तथा अमावास्या को क्षत्र कहा गया है।

ब्रह्म वै पौर्णमासी क्षत्रममावास्या।

कौषीतकि उपनिषद् ४/८

सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाली पूर्णिमा मर्यादित करते हुए कहा गया है-

कामो वै पौर्णमासी-

तैत्तिरीयब्राह्मण ३/११४/१५

पौर्णमास्यः प्रतिहारः।

षडविंश उपनिषद्-३/४

अथर्ववेद में अमावास्या के एक पर्याय सिनीवाली को देवताओं की बहन मानते हुए उसके प्रति आहुति दी गयी है-

सिनीवाली पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।

जुषस्व हव्यमाहूतं प्रजां देवि दिदिद्दिनः।

अथर्ववेद- ७/४/२/२

हे अल्प चन्द्रकला संयुक्त अमावस्या की अधिष्ठात्री देवते सिनीवाली! हे अनेक से स्तुत सिनीवालि! आप देवताओं की स्वसा हैं, अर्थात् वृष्टि आदि से स्वयंसारिणी होती है और समान कार्यवाली होने से आप देवताओं की भगिनी हैं ऐसी आप इस अभिमुख आहूत हवि का सेवन करें और हे सिनीवली देवते! आप हमको पुत्र आदि प्रजा दीजिए।

यहीं मंत्र ऋग्वेद में भी २/३२/७ में आया है।

ऋग्वेद के इस सूक्त में अगले मन्त्र में सिनीवाली को विश्वपत्नी, सुन्दर बाँहोंवाली, सुन्दर अंगुलियों वाली और सुप्रसविनी कहा गया है।

या सुबाहुः स्वंगुरिः सुषमाबहुसुवरिः।

तस्यै विश्वपत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥

ऋग्वेद-२/३२/०७

इसी सिनीवाली का अगले मन्त्र में कुहू और राका के साथ आवाहन किया गया है।

इस प्रकार ऋग्वेद और अथर्ववेद के इन स्थलों पर जिन कुहू एवं सिनीवाली का उल्लेख आया है उनके सम्बन्ध में निरुक्तकार यास्क ने स्पष्ट किया है कि ये दोनों देवियाँ हैं, ऐसा निरुक्त को परम्परा मानती है। किन्तु यास्क ने याज्ञिकों के मत का भी उल्लेख किया है, जिसके अनुसार ये दोनों शब्द अमावास्या तिथि के वाचक हैं।

सिनीवाली- कुहूरिति-देवपत्याविति नैरुक्ताः।
अमावास्ये इति याज्ञिकाः। या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली। योत्तरा सा कुहूरिति विज्ञायते।

निरुक्त । दैवतकाण्ड ।।

यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता में अनेक परस्पर विपरीत किन्तु एक दूसरे के पूरक पदार्थों के साथ पूर्णिमा और अमावस्या का उल्लेख हुआ है—
चित्तं च चित्तिश्चाकूतं चाकूतिश्च विज्ञातं च विज्ञानं
मनश्च शक्करीश्च दर्शश्च पूर्णमासश्च बृहच्च
स्थन्तरं च प्रजापतिर्जयानिन्द्राय वृष्णे प्रायच्छदुग्रः
पृतानाज्येषु तस्मै विशः समनयन्तः सर्वाः स उग्रः
स हि दृश्यो बभूव॥

यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता ३।४।४

यजुर्वेद में दर्श और पौर्णमासी इन दोनों तिथियों का उल्लेख विस्तार से हुआ है; क्योंकि इन दोनों तिथियों में से आरम्भ होनेवाले श्रौतयाग प्राचीन काल में अत्यन्त प्रचलित थे, जिन्हें सभी कामनाओं की पूर्ति करनेवाला कहा गया है।

अग्निहोत्री के लिए दर्श और पौर्णमास ये दोनों याग क्रमशः अमावस्या एवं पूर्णिमा तिथि को नित्य रूप से करने का विधान किया गया है। तैत्तिरीय संहिता के तृतीय काण्ड के पंचम प्रपाठक में इन यज्ञों का विस्तारपूर्वक वर्णन है। यहाँ कहा गया है—

माध्यं हि पौर्णमासं जुषेथां ब्रह्मणा वृद्धौ सुकृतेन
सतावथास्मभ्य सहवीरा रयिं नि यच्छतम्।

तैत्तिरीय संहिता : ३।५

इसके अतिरिक्त यजुर्वेद में अश्वमेध यज्ञ के सन्दर्भ में तिथियों के वर्णन मिलने के संकेत उपलब्ध होते हैं जिसे अनेक आधुनिक ज्योतिर्विदों ने उल्लेख किया है। यथा—

अग्नेः पक्षतिर्वार्योर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया
सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पंचमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतां सप्तमी
बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी
वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी॥

यजुर्वेद : २५/०४

पक्षति अर्थात् प्रतिपदा, निपक्षति अर्थात् द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथि तथा इनकी क्रम से देवता भी बतलाये गये हैं यथा— अग्नि, वायु, इन्द्र, सोम, अदिति, इन्द्राणी, मरुत्, बृहस्पति, अर्यमा, धाता, इन्द्र, वरुण तथा यम हैं।

यद्यपि इस स्थल पर यजुर्वेद के व्याख्याकारों के अनुसार अश्वमेध के घोड़े के तेरह अंगों का उल्लेख उनके देवताओं के साथ किया गया है। अतः इस स्थल पर तिथिगणना का कोई उल्लेख नहीं प्रतीत होता है ज्योतिष शास्त्र की परम्परा में तिथि के देवता की जो वर्तमान सूची उपलब्ध है, वह भी इसके अनुरूप नहीं है। अतः यहाँ तिथि का उल्लेख न होकर घोड़े के अंगों का ही उल्लेख हुआ है, यह मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है।

इस तरह स्पष्ट है कि पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी इन तीन महत्वपूर्ण तिथियों का पर्याप्त उल्लेख वैदिक वाङ्मय में भी उपलब्ध है।



ज्यौतिष केन्द्र
महावीर मन्दिर
पटना-१

श्री कृष्ण-क्रान्ति

○ गंगा पीताम्बर शर्मा 'श्यामहृदय'

b b

श्रीकृष्ण-क्रान्ति धार्मिक न्यायी, सन्त हैं। अद्भुत छटा, अद्भुत लावण्य, अद्भुत क्रिया कृपालु, सदाचारी, उदार तथा आस्तिकों के द्वारा कलाप। विधर्मी, अन्यायी, असन्त, दुष्ट, दुराचारी, कृपण तथा नास्तिकों के प्रति चुनौती का अभियान है। यह सम्प्रदाय विशेष का धरोहर नहीं, मानवता का समूर्त स्वरूप है। मानव धर्म इसका विश्लेषण है। इसका प्रयोजन सम्यक् विधि से स्वयं जीना और दूसरों को भी सविधि जीवन जीने की कला और विज्ञान से अवगत होना है। अपनी आत्मा के समान दूसरे जीवों के प्रति बर्ताव बरतने का सुझाव है। श्रीकृष्ण का सांगोपांग जीवन अर्थात् प्राकट्य से गोलोक गमन-पर्यन्त क्रान्तिमय रहा है। श्रीकृष्ण-क्रान्ति कला और विज्ञान की सीमा पार करती है।

कहा जाता है-

जहाँ विजय होती औरों की तीरों और कमानो से।
वहाँ विजय नटवर की होती केवल मुरली की तानों से।

कैसा था यह चमत्कार? साहित्यकारों के अनुसार रस नौ प्रकार के होते हैं। नौ रसों में शृंगार रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। पर वेदज्ञ- 'रसो वै सः' कह श्रीकृष्ण की ओर इंगित करते

श्रीकृष्ण क्रान्ति श्रीकृष्ण के प्राकट्य के साथ हुआ। प्राकट्य काल में अपने माता पिता को मथुराधीश कंस के कारागार में साँकल बँधे पाया। भाद्रमास की तमिस्रामयी घोर भयावनी रात और वर्षा का अपना उमड़ा तारुण्य, कृष्णाष्टमी कहलाने वाली तिथि का निशीथ काल, अर्थात् सब कुछ कोरा विपरीत। उधर कलाधर भी अपनी कलाएँ सँजोकर प्राची दिशा के क्षितिज में अपने को छुपाए श्रीकृष्ण प्राकट्य की प्रथम झाँकी दर्शन की प्रतीक्षा में थे। वह मणिकांचन योग भी आया। भाद्रमास की कृष्णपक्ष रोहिणी नक्षत्र अष्टमी तिथि निशीथ काल। प्राकट्य काल का हर्षोल्लास शोक समुद्र कैसे डूबोया जाय टेड़ी खीर था। भला एक महानतम क्रान्तिकारी कब तक निष्क्रिय बना रहते। अंग संचालन द्वारा इंगित किया- माता पिता के कर-पग लगे साँकल टूट पड़े। काराघर आप ही आप खुल गया। माता देवकी ने पति वसुदेव को उस नवजात शिशु को नन्दरानी यशोदा के पास पहुँचा देने का अनुरोध किया। महादुष्ट कंस के द्वारा मारे गये अपने छोटे

कंस के कारागार में अवतार लेकर यमुना तट पर केलि करने से लेकर महाभारत में 'गीता' का उपदेश और फिर द्वारका का शासन- श्रीकृष्ण की लीला विविधताओं से भरी हैं। प्रत्येक रूप में कृष्ण ने जगत् का कल्याण किया है। कृष्ण के इन रूपों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं- वयोवृद्ध लेखक गंगा पीताम्बर शर्मा 'श्याम हृदय'

कहा जाता है-
जहाँ विजय होती औरों की तीरों और कमानो से।
वहाँ विजय नटवर की होती केवल मुरली की तानों से।

पुत्रों के शोक सन्ताप से बचने के लिए अन्तिम युक्ति थी। चहुँधा भयावह अर्थात् अथाह जलराशि, भयावनी रात और यमुना में बाढ़। क्रान्तिकारी भय नहीं जानते। जानते हैं अथक परिश्रम और प्रयास। फल की चिन्ता नहीं। वसुदेवजी सूप में नवजात शिशु को रख सर पर धारण किया। यमुनाजी ने चरणोदक लेकर जल थाह कर दिया। वसुदेवजी नन्दजी की गोद में रख उनकी नवजाता कन्या को लिए आये। कैसी थी यह माया! किसी ने कुछ नहीं जाना।

उधर वसुदेवजी की मार्ग सुगमता के हेतु शशांक ने धराधाम को श्री ज्योत्स्ना मण्डित कर नयनाभिराम के दर्शन कर मानस तृप्त हो आगे बढ़े। चोर न सहे इजोर। भला उस स्वयं प्रभु समुज्ज्वल के साम्राज्य में तमिस्रा का क्या राज। भागी भागी अभागी-सी कहीं खो गई। मानो अज्ञानता की घोर तमिस्रा ज्ञानदीप के आलोक में लुप्त हो गई। निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्म रूप में प्रकट हुआ। उस महाविराट का क्षुद्र विराट् में प्रवेश कितना आश्चर्यमय है। नहीं जानती यशोमति कि उनके प्रसवगृह में अनजान शिशु पूर्णेन्दु की कमनीयता अभिमानी कन्दर्प की रमणीयता, अश्विनीकुमार की दिव्यता भरे अनन्त गुण सागर कमलनयन, कुंचित कुन्तल राशि अंक में अंग संचालन कर रहे हैं। अंग-स्पर्श से जागी; माया फिरी; देखा तो लगभग किशोर वयस, कुन्तल केश, मणि गुम्फित स्वर्ण मुकुट, भाल पर गोरोचन का आकर्षक अनुलेपन, ग्रीवा में कौस्तुभ मणि, कर्ण में मकराकृत कुण्डल, सुघड़ बाहु में बाजूदण्ड, गले में त्रिलरहार वनमाला, चर्तुभुज में शंख चक्र गदा और पद्म सुशोभित थे। भाद्र मास की भयावनी अर्द्धरात्रि में त्रिभुवन सुन्दर विश्वात्मा का पृथ्वी का भार उतारने के लिए विश्व शिरोमणि भारत के मथुरा ग्राम के कारा में अवतीर्ण हुए। बस, विस्मय, मधुर क्रान्ति।

एक दिन दुखिया निरापराध माता-पिता के करपद हथकड़ी बेड़ी लगी अवस्था में जो सुख ब्रह्मा-ब्रह्माणी, शिवा-शिव-रमा-रमापति एवं सिद्ध जनों को सुलभ नहीं, अभूतपूर्व सुख उस देवकी के नन्दन श्रीकृष्ण ने प्रदान किया। अकस्मात वह सुख मिला जो दोनों आँखों से अन्धे को दोनों आँखे मिल जाय। अपने पूर्वावतारों सहित उनकी कथाओं का स्मरण कराया। फिर नन्हें बालक पुत्र का प्रयोजन ही बतलाया गया है- “पुं नाम नरक त्राणार्थं पुत्रम्” कारा की यातनाएँ, दीनता की व्यथा तथा बुढ़ापे और चिररुग्णता ही ‘पुं’ नाम नरक है। प्राथमिकता दी माता पिता को कष्ट से निवृत्त कराया। संकेतानुसार वसुदेवजी ने उन्हें गोकुल पहुँचाया। शरीर की छाया के समान श्रीकृष्ण के साथ क्रान्ति अंगीभूत रहती। मथुरा का सुख सदन गोकुल आया और गोकुल की क्रान्ति मूर्ति माया मथुरा छापी। देवकी के छह पुत्रों का वध करनेवाला उस कन्या वध के प्रयास से कंस ताड़ गया, अब उसे मारनेवाला अवतार ले चुका है।

श्रीकृष्ण ने अपने चर्तुभुज स्वरूप में अपने पिछले अवतारों का रहस्यों का भेदन करते हुए अपना नाम पृश्निगर्भ- उपेन्द्र बतलाया। अपने चर्तुभुज स्वरूप में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करना क्रान्तिकारी विग्रह प्रमाणित हुआ। शंख दिक्-दिगन्त दहलाने और अम्बर भेदन करता हुआ अमरावती को थरानेवाला है। चक्र भी सुदर्शन चक्र नाम से विश्वविश्रुत है। श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र दानवों का विनाशक कहा गया है। गदा धारण तो वीरोचित आभूषण जैसा है। गदाहस्त हनुमानजी और भीम सदा सावधान और तत्पर पाए गये हैं। तथा पद्म अर्थात् कमल कीच से उत्पन्न होकर अथाह जल राशि की भीत का भेदन करता हुआ ऊपर आकर खिलता है, जैसे घोर तमिस्रा का भेदन करती हुई रवि रश्मि या विश्व को आलोकित करती है। स्पष्टोक्ति है कि खल-लम्पट परिकर का मर्दन विनाश करते हुए

सत्य की ओर गतिशील होना। शास्त्रकारों का भी कथन है- अग्रतः सत्य की ओर गतिशील होना। शास्त्रकारों का भी कथन है- अग्रतः सकलं शास्त्रं पृष्ठतः सशरंधनुः अर्थात् शस्त्र धारण मानवोचित ही है। अर्थात् श्रीकृष्ण का अवतार रहस्य श्रीकृष्ण क्रान्ति की ओर संकेत करता है।

श्रीकृष्ण क्रान्ति के दो प्रकार हैं, कोमल और कठोर। बाल्यकाल भी अनूठा ही रहा। फिर वही छवि कान्ति लावण्य जो विश्वभावन कामदेव और अश्विनीकुमार में विद्यमान थे, ये सब श्रीकृष्ण में समाहित होकर दिनानुदिन निखरते गए। माता यशोदा के घर आँगन की छवि में चार चाँद लगानेवाले नवजात शिशु रूप में त्रिभुवन सुन्दर का समावेश। परिवार क्यों न इठलाए- इतराए। होनहार विरवान के होत चिकने पात। मन मोहनी वेष में अर्थात् काले काले घुँघराले बाल को मालती की जुड़ा माल से सवार, तरुणी मदमाती मत्तगयन्द चाल में अपने अनावृत स्तन में हलाहल का लेपन कर, नन्द रानी के प्रसूति-गृह में प्रवेश कर गई पूतना। शिशु श्रीकृष्ण ने पहचाना-प्रयोजन समझा। अपनी-अपनी गोटी, चाल जो हो। शिशु को उठा अपना स्तन धराया। बस, श्रीकृष्ण ने ऐसा चूस मारा कि प्राण पखेरू ही उड़ गए। अपने वास्तविक स्वरूप राक्षसी रूप में गिरी। पर वे कृपा परवश ने स्तन स्पर्श के नाते माता की गति प्रदान की। दूध पिलाने की चिर लालसा भी पूरी हुई। मुसकान मारते हुए अपनी कोमल क्रान्ति का सम्पादन किया।

उधर शिलाखण्ड पर पटकते कन्या का हाथ से छुट जाना और अष्टभुजी दुर्गा स्वरूप का यह उद्घोष कि तेरा मारनेवाला कहीं पल रहा है, कंस सदा सशक्त और भयभीत रहता। पूतना वध से वह और भयभीत हुआ। भेजा श्रीधर पण्डित को कि हस्त रेखा देखने के बहाने अकेले पड़ने पर गला दबाकर मार डालेंगे। श्रीकृष्ण ने अंग संचालन किया, किलकारियाँ भरी। पण्डित

ने गला दाबने के लिए हाथ उठाया, शिशु श्रीकृष्ण ने गला दबोच डाला। पण्डित यमधाम सिधारे। इस प्रकार बकासुर, शकटासुर तथा तृणावर्त के निधन का समाचार कंस को मिला। जातकर्म और नामकरण तो चोरी चोरी हुआ ही कि कहीं पापी कंस न जान जाय। 'अन्धेषु दीपः बधिरेषु गीतम्' का क्या प्रभाव, क्या ज्ञान?। दन्तोद्भेदन के पश्चात् अपने ईश्वरत्व का आभास विप्र को दिया। माता यशोदा एक विप्र को भोज्य सामग्री देती हैं, वह भोग भगवान् को निवेदित करते हैं। बालकृष्ण भोग ग्रहण कर लेते हैं। बेचारा ब्राह्मण बालक का जूठा जान भोग नहीं लगाता। कुछ बार ऐसा ही हुआ। फिर वहीं बातें। माता ने कान पकड़ पूछा- ऐसी ढिंढाई क्यों करते हो। उन्होंने कहा- ये ब्राह्मण बार-बार मुझे ही अर्पण करते हैं, तो मैं क्या करूँ? त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' ब्राह्मण! क्या असत्य है? ब्राह्मण ने स्वीकार किया, क्षमा माँगी। मिट्टी खाने के आरोप में मुँह खोल बाया गया तो अतिशय भ्रान्ति सी लगी। देखा गया- मुख में अनन्त पृथ्वी सूर्य चन्द्रमा, नवग्रह तारे, नदियाँ, पहाड़, जंगल, समुद्र आदि विद्यमान हैं। अनेक अन्य भ्रमित करनेवाले दृश्य हैं। इसका रहस्योद्भेदन यों हैं- किसी की बातों में पड़ आरोप लगाना छोटा जान अवज्ञा करना बुरा है। शक्ति कद और अवस्था में अन्तर्निहित नहीं। यक्षराज के पुत्र नल कूबर और मणिग्रीव शाप वश यमलार्जुन वृक्ष बने थे, उनका उद्धार किया। सामाजिक दोष कुरीति अनीति परम्परा के उन्मूलन के प्रयास को क्रान्ति कहते हैं। यह सदा सर्वथा रचनात्मक होती है। उन्होंने न्यायसंगत अधिकार पर अतिक्रमण करना असह्य अनीति का विरोध किया। मदान्ध का मान मर्दन किया। इसी चपेट में पड़े ब्रह्मा तथा इन्द्र का मद मर्दन किया। वकासुर, अघासुर, धेनुकासुर, प्रलम्बासुर चाणूर, मुष्टिक, कंस, कालयवन, शतधन्वा, जरासन्ध आदि का अन्त किया। शाल्व वध भी हुआ।

इसके अतिरिक्त पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विन्दुरथ, रोमहर्षण, विल्वल, शिशुपाल वध हुआ। श्रीकृष्ण की सर्वविदित क्रान्तिजन्य घोषणा थी-

**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥**

कोरी भागवत्ता तो उत्तरा के मृत पुत्रों में नव जीवन को संचार प्रकट हुई। श्रीकृष्ण का समष्टिवादी दृष्टिकोण उन्हें सर्वप्रिय बना दिया। पार्थपुत्र बभ्रुवाहन ने धोखे में पार्थ का सर उतार लिया। श्रीकृष्ण ने अनहोनी को होनी में बदल सर जोड़ दिया। धर्म की जय, अधर्म का नाश हो' का दृढसंकल्प अन्त तक निवाहा। अन्याय अधर्मकृत संकल्प समुदाय के लिए कठोर क्रान्ति रही। कठोर राक्षसों के साथ कठोर क्रान्ति वध दण्ड तदन्तर चरितार्थ किया। कंस के साथ वही दण्ड संहिता बरती गई- उदाहरण श्लोक ये हैं-

**अरक्षितारं हर्तारं विलोसारमनायकम्।
तं वै राजकलिं हन्युः प्रजाः सन्नह्य निर्घृणम्।।**

अर्थात् जो राजा (लोकतंत्र का मुख्यमंत्री एवं प्रधानमंत्री) अपनी प्रजा रक्षा करने में असमर्थ हो, निरन्तर हत्याएँ हो रही हो, धन धर्म अरक्षित हो, मन मानी करता हो, उसे बिना दया दिखाए मारने में कोई दोष नहीं। राजनायक को हराना ही उनकी राजनीतिक हत्या है। पुनः वही संहिता कहती है-

**अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणी धनापह,
क्षेत्र दारा पहारी च षड्देते आततायिना।**

अर्थात् आग लगाने वाले, विष पिलाने वाले हाथ से शस्त्र छीनने वाले धन हड़पने वाले खेत और पत्नी छीनने वाले आततायी कहलाते हैं:-

पुनश्च- आततायिनां न वधे दोषाः

अर्थात् आततायी के वध करने में कोई दोष नहीं है। कौरवों में सभी आततायी ही थे, उपरोक्त सारे दोष भरे थे। अतएव सबका वध उपयुक्त कारणों से हुआ। त्रेता की संहिता श्रीराम के समय में भिन्न थी- उन्होंने कहा-

**अनुज बधू भगिनी सुत नारी, ये सब हैं कन्या सम चारी,
इन्हें कुदृष्टि विलोके जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई।**

इन्हीं आरोपों पर बालि का वध हुआ। पत्नी अपहरण दोष पर रावण का वध हुआ। धन हड़पने से दुर्योधनादि का वध हुआ। महात्मा संबोधित होनेवाले भीष्म ने अनर्थ अनाचार अपनी आँखों देखा। दुराचारी के पक्षधर रहे तो बाण शय्या पर सोए रहे।

प्रिय पाठक, इस कठोर क्रान्ति से मधुराति मधुर क्रान्ति की ओर बढ़े। क्रान्ति का अर्थ या प्रयोजन अन्याय से न्याय, अधर्म से धर्म, प्रतिकूल्य से आनुकूल्य तथा विरोध से समर्थन का परिवर्तन होना ही क्रान्ति है। एक तो श्रीकृष्ण का अतिसी पुष्प-श्यामला सलोना स्वरूप, परम विमोहक लावण्य कैशोर्य की अद्भुत छटा का प्रस्फुटन, रोम रोम से छिटकती पंचशरोपम आभा अर्थात् पूर्णेन्दु सुन्दर श्री विग्रहा माता अनूप मातृत्व उपरनी के अतिरिक्त वेल-बूटे लगे किनारियों की पीताम्बरी-परिशोभित श्याम-मुरली मनोहर नानाविध दिव्याभूषणों से अलंकृत त्रिभंगी स्वरूप। अनुपम नयन कटाक्ष-अर्थात् चलचितवन, बंकिम भृकुटी, शुक नासिक, मृदुल इषत्हास, प्रसन्न मुद्रा, अरुणोपम अधरोष्ठ अर्थात् नखशिख कल्पनातीत साज सौरभ। यह रूप माधुरी मधुर क्रान्ति की प्रथम भूमिका रही। कुछ कहे सुने नयनाभिराम के प्रति अपने को खो कर जीवन समर्पण।



**खैरिया
लौरिया, पं. चम्पारण**

bb

वेणुगीत

○ अरविन्द मानव

bb

[श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के २१वें सर्ग में श्रीकृष्ण की कोमल, अलौकिक वृन्दावन लीला का काव्यात्मक वर्णन सस्मित समाधि के आनन्द की अवधारणा का निदर्शन है। श्रीकृष्ण मस्तक पर मोरपंखी, कानों में कनेर का फूल, गले में वैजयन्ती माला डाले, सुनहरे पीले वस्त्र पहने, बंसी के छेदों को अपने अधरामृत से भरते, नटवर वेष बनाए वृन्दावन में पधारते हैं। यह अध्याय 'वेणुगीत' के नाम से विख्यात है। महावीर मन्दिर से प्रकाश्य भागवत हिन्दी पद्यानुवाद से यह अंश यहाँ उद्धृत है।]

श्री गणेश इक्कीसवाँ, यह अध्याय पुनीत।
मुझ मानव का दैन्य अब, टालो मोहन मीत॥
बोले श्री शुकदेवजी, आगे कथा पवित्र।
शीत काल में हो गयी, वन की छटा विचित्र॥

जल स्वच्छ वायु बहती थी जब, लेकर निज संग पद्म रजकण।
गो-गोपालों को संग लिये, प्रभुवर श्रीकृष्ण घुसे उस वन॥१॥
भौरै गुंजन पक्षी कलरव, करते थे पुष्पित वृक्षों पर।
गिरि सरित सरोवर सारे ही, गुंजित रहते स्वर को पाकर॥
मधुपति भगवान् कृष्ण ने तब, गोपाल और बलराम सहित।
गो-चारण करते छेड़ दिया, सुर मधुर वेणु पर हो प्रमुदित॥२॥
प्रभु के प्रति प्रीति बढ़ाती वह, वंशी-ध्वनि गोपाओं के मन।
सुन सखियाँ सभी करें छिपकर, हरि का गुण रूप मधुर वर्णन॥३॥
आरंभ किया वंशी वर्णन, पर लीलाएँ हो गयीं स्मरण।
इससे विक्षिप्तमना होकर, कह सकीं न कुछ वे, हे राजन्॥४॥
कर्णों में कर्णिकार शोभित, सिर मोरपंख धर नटवर तन।
माला शुभ धरे वैजयन्ती, औ स्वर्णाभायुत पीत वसन॥
निज अधरामृत से ही करने, वंशी के छिद्रों को पूरित।
अपने पीछे शुभ गुण गाते, संगी जन गोप समूह सहित॥

यों आते ब्रजराज जब, वर वृन्दावन धाम।

पदरज पावन करे तब, कण-कण क्षेत्र ललामा॥५॥

हे राजन्, मोहित करता था, जड़ चेतन को वह वंशी स्वर।
गोपियाँ लगीं वर्णन करने, हरि का सुमधुर वादन सुनकर॥६॥
बोलीं, “सखियाँ, हम तो जानें, कुछ और न एकमात्र यह फल।
इस नयनयुक्त जीवन का तो, दिखता है लाभ यही केवल॥
पशु के पीछे साथी के संग, बलराम कृष्ण दोनों सुन्दर।
ब्रज में आते ब्रजेश के सुत, मुरली धरे निज अधरों पर॥

कर कटाक्ष जब देखते, प्रेमपूर्ण हिय मान।

मुख मंडल माधुर्य का, तभी करें हम पाना॥७॥

जब कमल पुष्प औ मोरपंख, मालाएँ बहुविध कर धारण।
जा मध्य बैठ गोपालों के, वर वेश विचित्र धरे निज तन॥
गाते तो शोभा हो कैसी, कैसे सखियाँ कर सकूँ प्रकट।
लगता ज्यों अभिनय करते हों, चातुर्य-पूर्ण दो नट नटखट॥८॥
क्या किया वेणु ने जप साधन, जो दामोदर का अधरामृत।
जा रहा पिये वह सब अशेष, पा मात्र गोपियों के ही हित
कमल-खिले रस-भरे सरोवर, रोमांचित-से लगते हैं।
ये श्रेष्ठ जनों-सी ही जुड़कर, रस आनन्दाश्रु बहाती है॥९॥
सखि, वृन्दावन ही करता है, धरती का यह नभ तक विस्तृत।
देवकीपुत्र पद-कमलों से, जो होता रहता है चिह्नित॥
करते हैं नृत्य मयूर तभी, जब मुरली मधुर बजाते हैं।
यह देख पर्वतों पर खग मृग, चुपचाप खड़े हो जाते हैं॥१०॥
नट वेश कृष्ण की मधु धुन सुन, पति कृष्णसार मृग सँग आती।
हरिनियाँ मूढमति होकर भी, निज नेत्र निछावर कर जातीं।
श्रीकृष्ण मूर्ति की प्रणय दृष्टि, पाकर हो गया श्रेष्ठ जीवन।
है धन्य वही हमने तो बस, दे दिया कृष्ण को यों ही मन॥११॥
नारी मोहक गुणशील वान, श्रीकृष्ण बजाते वंशी जब।
अपने विमान पर सुध-बुध खो, देवियाँ विकल हो जाती तब॥
रहता न होश अपने तन का, हरि का विचित्र वादन सुनकर।
हो जाते नीवी रहित वस्त्र, औ वेणी पुष्प रहे थे झर॥१२॥
श्रीकृष्ण अधर के वेणु गीत, अमृतसम सुनकर सब गायेँ।
तन्मय हो कान खड़े करके, वह अमिय सरस स्वर पी जायेँ॥

मन से ही हरि का आलिंगन, बछड़े भी मुँह में दूध भरे।
 दूध टपकते थन को तजकर, चित्रित हो मन में मोद करें॥१३॥
 इस वन के विहगों को देखो, ये बड़े सुसिद्ध सभी मुनिजन।
 जो कृष्ण रूप को देख रहे, औ करें वेणुस्वर मधुर श्रवण॥
 मूँगे-सी कोपल-भरी डाल पर, चढ़कर प्रभु रूप निरख अपलक।
 हो रहे धन्य प्रभु वाणी सुन, एकाग्र चित्र अर्पित सम्यक्॥१४॥
 नदियों के लहरों को देखो, हरि संयोगेच्छा से पूरित।
 सुनकर उनकी वंशी की धुन, हो गयी तीव्र धारा रोधित॥
 उताल तरंगों के कर से, यों पकड़ रही है कमल चरण।
 मानो मुरलीधर को मन से, आकुल हो करती आलिंगन॥१५॥
 बलराम कृष्ण को पशुधन संग, आतप से क्लान्त देखते घन।
 करते छाया हो प्रेम विवश, जब श्याम करें वंशी वादन॥
 निज सखा हेतु छत्र बना, वे मृदु फुहार है बरसाते।
 मानो बूँदें हो श्वेत-कुसुम, सब कुछ न्योँछावर कर जाते॥१६॥
 भीलनियाँ ब्रज की धन्यभाग, तिनकों से लेती वह केसर।
 जो प्रभु प्रेयसियों के स्तन से, लग जाते हरि के चरणों पर॥
 चरणों से तृण में लगे हुए, उस केसर को पा जाती है।
 लख प्रेम विवश मिलनातुर हो, कुच आनन लेप लगाती है॥१७॥
 गिरिपति गोवर्द्धन अहोभाग्य, जो राम कृष्ण के कमल चरण।
 पाकर स्पर्श हरिभक्त श्रेष्ठ, कर लेता प्रमुदित अपना मन॥
 गोपों गौओं को भी देता, निर्झर तृण जल मधुफल।
 हो धन्य कृष्ण पद सेवा से, करता प्रदान विश्रामस्थल॥१८॥
 कंधे पर फन्दा दाम शीश, गौ गोपों के सँग वन से वन।
 अधरों पर मुरली तान मधुर, जब गीतों का करते गायन॥
 वह वेश विचित्र वहाँ कैसा, क्या कहूँ कि शोभा पाता है।
 चेतन जड़ वन हो जाते तब, जड़ रोमांचित हो जाता है॥१९॥
 वृन्दावन वासी उस प्रभु की, लीलाएँ बहुत हुई, राजन्।
 गोपियाँ हुआ करती तन्मय, उन क्रीड़ाओं का कर वर्णन॥

कृपा हुई प्रभु, हो सका, पूर्ण परम अध्याय।

थामो नैया दीन की, कहीं डूब नहीं जाय॥



श्रीराधाकृष्ण ठाकुरबाड़ी सामस, बरबीघा, शेखपुरा 811101

शुक्लयजुर्वेदीय मुक्तिकोपनिषद्

○ स्व० आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

b b

(मुक्तिकोपनिषद् की विशेषता यह है कि इसमें जहाँ एक ओर वेदान्त की महिमा और मुक्ति के भेद बताये गये हैं, वहीं इसमें उपनिषदों की तालिका भी दे दी गयी है। उपनिषदों के पाठक-माहात्म्य और उनको (उपनिषदों) सुनने के अधिकारी का लक्षण भी बता दिया गया है।)

प्रथम अध्याय

मैं बिना किसी प्रयास के इस सांसारिक बन्धन से छूट जाऊँ। इसलिए आप कृपाकर मुझे

वह बता डालिए, जिससे मैं मुक्त हो जा सकूँ॥६॥

श्रीराम ने हनुमानजी से कहा-
“महाबली हनुमान्!
तुमने बड़ी अच्छी बात पूछ ली। मैं तुम्हें सारी तत्त्व की बात बताये दे रहा हूँ। सुनो! मेरा स्वरूप तो वेदान्त में ही बताया गया है, इसलिए तुम वेदान्त

वैदिक वाङ्मय में ब्राह्मण-ग्रन्थों के अंश रूप में प्राचीन उपनिषदों की रचना ज्ञानकाण्ड के प्रवर्तन के लिए की गयी किन्तु कालान्तर में उपासनापरक उपनिषद् ग्रन्थ भी रचे गये। फलतः आज उपनिषदों की संख्या १०८ तक पहुँच गयी है। मुक्तिकोपनिषद् में इन सबका उल्लेख एवं विभाजन उपलब्ध है।

महावीर मन्दिर से प्रकाश्य आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा अनूदित उपनिषदों के संकलन से यह अंश यहाँ प्रस्तुत है।

शास्त्र को समझ लो॥७॥

हनुमानजी ने पूछा- “यह वेदान्त क्या है और यह कहाँ है? यह मुझे बता दीजिए।” राम बोले- “देखो हनुमान्! मैं तुम्हें अभी बताये देता हूँ कि वेदान्त कैसा है और कहाँ है?॥८॥ देखो! चारों वेद विस्तार के साथ मेरी सांस से ही उत्पन्न हुए हैं और जैसे तिलों में तेल होता है वैसे ही वेद में वेदान्त समाया हुआ है॥६॥”

एकबार श्रीराम अपनी राजधानी अयोध्या में सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के साथ मण्डप में सिंहासन पर बैठे हुए थे॥१॥ सनक, सनन्दन आदि मुनि वसिष्ठ आदि गुरु और शुक आदि भगवान् के भक्त उनकी स्तुति कर रहे थे (उनके गुण गा रहे थे)॥२॥

एक दिन श्रीराम समाधि लगाकर बैठ गये॥३॥ समाधि टूटने पर हनुमानजी ने बड़ी भक्ति के साथ उनसे कुछ सुनने की इच्छा से पूछा कि आप तो सच्चिदानन्द स्वरूप साक्षात् परमात्मा हैं॥४॥ हे श्रीराम! मैं आपको बार-बार प्रणाम करता हुआ अपनी मुक्ति के लिए आपके रूप को ठीक-ठीक जानना चाहता हूँ॥५॥ जिससे

हनुमानजी ने पूछा- “श्रीराम यह तो बताइये कि वेद हैं कितने प्रकार के? उनकी शाखाएं कितनी हैं और उनके उपनिषद् कौन-कौन से हैं?”॥१०॥

श्रीराम ने कहा- “ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के भेद से चार वेद हैं। उनकी शाखाएं भी अनेक हैं और उनके उपनिषद् भी बहुत हैं॥११॥ ऋग्वेद की तो इक्कीस शाखाएं हैं और यजुर्वेद की एक सौ नौ शाखाएं हैं॥१२॥ देखो हनुमान्! सामवेद की तो एक सहस्र शाखाएं हैं और अथर्ववेद की पचास शाखाएं हैं॥१३॥

इनमें से एक-एक शाखा का एक-एक उपनिषद् है। उनमें से जो पुरुष एक भी ऋचा का भक्ति के साथ पाठ कर लेता है॥१४॥ वह मेरी उस सायुज्य मुक्ति को पा लेता, जो बड़े-बड़े मुनियों को भी नहीं मिल पाती।”

हनुमानजी ने पूछा- “कुछ लोग तो कहते हैं कि मुक्ति एक ही प्रकार की होती है॥१५॥ कुछ कहते हैं कि आपका नाम जपने भर से मुक्ति हो जाती है। कुछ कहते हैं काशी में तारक मन्त्र (राम) मिल जाने से ही मुक्ति हो जाती है। कुछ कहते हैं कि सांख्य योग से मुक्ति मिलती है और कोई कहते हैं कि भक्ति से मिलती है॥१६॥ कुछ बड़े-बड़े ऋषि लोग कहते हैं कि वेदान्त के वाक्यों के अर्थ पर विचार करने से मुक्ति होती है और कुछ लोग कहते हैं कि-मुक्ति चार प्रकार की होती है (सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, कैवल्य)”॥१७॥

राम ने कहा- “देखो! इनमें एक कैवल्य मुक्ति ही ऐसी है, जो परमार्थरूप वाली है (अर्थात् ब्रह्मरूप वाली है) इसके अतिरिक्त दुराचारी मनुष्य भी यदि भक्तिपूर्वक मेरा नाम स्मरण करता रहे॥१८॥ तो, उसे सालोक्य मुक्ति मिल

जाती है, जहाँ से वह दूसरे लोकों में नहीं जाता और जिसकी काशी में ब्रह्मनाल में मृत्यु होती है, उसे मेरा तारक मन्त्र मिल जाता है॥१९॥ जिससे उस (जीव) को ऐसी मुक्ति मिल जाती है कि फिर जन्म मरण के चक्कर में नहीं पड़ना पड़ता, इतना ही नहीं, काशी में कोई कहीं भी मरे भगवान् शंकर उसके दाहिने कान में तारक मन्त्र का ऐसा उपदेश कर देते हैं जिससे उसके सारे पाप झड़ गिरते हैं और वह मेरे जैसा रूप पा लेता है॥२०-२१॥ यही सालोक्य सारूप्य मुक्ति कहलाती है, जो द्विज अच्छे आचरण करता हुआ नित्य केवल मेरा ही ध्यान करता है॥२२॥ (और) मुझे सर्वात्म स्वरूप समझता है, वह सामीप्य मुक्ति पाकर मेरे पास रहता है। वही सालोक्य, सारूप्य सामीप्य नाम की मुक्ति कहलाती है॥२३॥ जो द्विज गुरु से उपदेश लेकर मेरे निरंकार रूप का ध्यान करता है वह भृंगी के समान मेरा सायुज्य पा लेता है॥२४॥ यही सायुज्य मुक्ति कल्याणमयी और ब्रह्मानन्द देने वाली है। मेरी उपासना से ये चार प्रकार की मुक्तियाँ मिलती हैं। सायुज्य, सारूप्य, सालोक्य एवं कैवल्य॥२५॥ इनमें कैवल्य मुक्ति किस उपाय से मिल सकती है, वह बताता हूँ सुनो- “केवल माण्डूक्य उपनिषद् पढ़ने से ही मुक्ति की इच्छा करनेवालों को मुक्ति मिल सकती है॥२६॥ यदि उससे भी ज्ञान पक्का न हो पावे, तो दस उपनिषदों का पाठ करो, उनसे ज्ञान प्राप्त करके मेरा लोक अद्वैतधाम प्राप्त कर लो॥२७॥ देखो हनुमान्! यदि उनसे भी ज्ञान पक्का न होता हो, तो बत्तीस उपनिषदों का ठीक-ठीक अभ्यास करके संसार से पार हो जाओ॥२८॥ यदि विदेह मुक्त (शरीर छोड़ने पर मुक्ति) चाहते हो तो (१०८) एक सौ आठ उपनिषदों का पाठ करो। जिनके नाम क्रम और शान्तिपाठ मैं तुम्हें बताये दे रहा हूँ ध्यान से

सुनो-॥२६॥

- | | |
|----------------------|-----------------------------|
| १. ईश | ३३. सर्वसार |
| २. केन | ३४. निरालम्ब |
| ३. कठ | ३५. शुकरहस्य |
| ४. प्रश्न | ३६. वज्रसूचिका |
| ५. मुण्डक | ३७. तेजोविन्दु |
| ६. माण्डूक्य | ३८. नादविन्दु |
| ७. तैत्तिरीय | ३९. ध्यानविन्दु |
| ८. ऐतरेय | ४०. ब्रह्मविद्या |
| ९. छान्दोग्य | ४१. योगतत्त्व |
| १०. बृहदारण्यक | ४२. आत्मप्रबोध |
| ११. ब्रह्म | ४३. नारद परिव्राजक |
| १२. कैवल्य | ४४. त्रिशिखिब्राह्मण |
| १३. जाबाल | ४५. सीता |
| १४. श्वेताश्वतर | ४६. योगचूड़ामणि |
| १५. हंस | ४७. निर्वाण |
| १६. आरुणिक | ४८. मण्डलब्राह्मण |
| १७. गर्भ | ४९. दक्षिणामूर्ति |
| १८. नारायण | ५०. शरभ |
| १९. परमहंस | ५१. स्कन्द |
| २०. अमृत बिन्दु | ५२. त्रिपाद्विभूतिमहानारायण |
| २१. अमृत नाद | ५३. अद्वयतारक |
| २२. अथर्व शिरस | ५४. रामरहस्य |
| २३. अथर्वशिखा | ५५. रामतापनीय |
| २४. मैत्रायणी | ५६. वासुदेव |
| २५. कौषीतकि ब्राह्मण | ५७. मुट्टल |
| २६. बृहज्जाबाल | ५८. शाण्डिल्य |
| २७. नृसिंहतापनीय | ५९. पैङ्गल |
| २८. कालाग्निरुद्र | ६०. भिक्षुक |
| २९. मैत्रेयी | ६१. महत् |
| ३०. सुबाल | ६२. शारीरक |
| ३१. क्षुरिका | ६३. योगशिखा |
| ३२. मान्त्रिका | ६४. तुरीयातीत |
| | ६५. संन्यास |

६६. परमहंस परिव्राजक	१००. हयग्रीव
६७. अक्षमाला	१०१. दत्तात्रेय
६८. अव्यक्त	१०२. गरुड
६९. एकाक्षर	१०३. कलिसन्तरण
७०. अन्नपूर्णा	१०४. जाबालि
७१. सूर्य	१०५. सौभाग्यलक्ष्मी
७२. अक्षि	१०६. सरस्वती रहस्य
७३. अध्यात्म	१०७. बह्वच
७४. कुण्डिका	१०८. मुक्तिकोपनिषद्।
७५. सावित्री	ये एक सौ आठ उपनिषदें मनुष्य के
७६. आत्मा	तीनों तापों का नाश करती हैं। इनको पाठ करने
७७. पाशुपत	से ज्ञान और वैराग्य प्राप्त होता है और सारी
७८. परब्रह्म	वासनाएं (लोकवासना, शास्त्रवासना और देहवासना)
७९. अवधूत	नष्ट हो जाती हैं॥४०॥
८०. त्रिपुरातापनीय	प्रत्येक उपनिषद् से पहले और पीछे जो
८१. देवी	शान्तिपाठ दिया हुआ है। उनका पाठ करते हुए,
८२. त्रिपुरा	जो वेद विद्या पढ़े हुए व्रत करने वाले स्नान किए
८३. कठरुद्र	हुए और आत्मा का उपदेश देने वाले के मुख से
८४. भावना	शान्ति पाठ सुनकर, जो द्विज श्रेष्ठ (एक सौ आठ
८५. रुद्ररहस्य	उपनिषदों का पाठ करते हैं। वे तब तक जीव-मुक्त
८६. योगकुण्डली	बने रहते हैं, जब तक उनके प्रारब्ध कार्यों का
८७. भस्मजाबाल	अन्त नहीं हो जाता॥४१-४२॥
८८. रुद्राक्षजाबाल	तब समय आने पर जब प्रारब्ध कर्मों का
८९. गणपति	नाश हो जाता है, तब वे बिदेहमुक्ति पा लेते हैं,
९०. जाबालदर्शन	इसमें कोई सन्देह नहीं॥४३॥
९१. तारसार	सब उपनिषदों में यह एक सौ आठ
९२. महावाक्य	उपनिषद् हीं सबके सार हैं, इनका एकबार भी
९३. पञ्चब्रह्म	कोई पाठ कर ले, तो उसके सारे पाप नष्ट हो
९४. प्राणग्रिहोत्र	जाते हैं॥४४॥
९५. गोपालतापनीय	देखो हनुमान्! तुम मेरे शिष्य हो, इसलिए
९६. कृष्ण	मैंने तुम्हें यह शास्त्र खोल सुनाया है। मैंने तुम्हें जो
९७. याज्ञवल्क्य	वर्णन किया है, यह एक सौ आठ उपनिषदों का
९८. वराह	
९९. शाट्यायनीय	

शास्त्र बहुत ही गोपनीय है।।४५॥

जो कोई जाने या अनजाने या प्रसंग से ही इनका पाठ कर लेता है। वह सारे संसार के बंधन से छूट जाता है, अगर कोई तुम्हें राज्य अपना धन भी दे तब भी यें एक सौ आठ उपनिषद् किसी ऐसे वैसे को मत बता देना।।४६॥

और फिर जो नास्तिक है कृतघ्न हो, (अपने साथ की हुई भलाई न मानता हो) दुराचारी हो, मेरी भक्ति से मुँह मोड़े बैठा हो केवल शास्त्र के गढ़ों में गिरकर चक्कर काट रहा हो और जो गुरु की भक्ति न करता हो उसे ये उपनिषद् कभी नहीं सुनाने चाहिए।।४७व४८॥

देखो हनुमान्! सेवा करनेवाले शिष्य को आज्ञाकारी पुत्र को, मेरे भक्त को, अच्छे कुल में उत्पन्न होनेवाले को, सुशील को अच्छी बुद्धि वाले को बहुत ठोक बजाकर (भली भाँति परीक्षा कर के) ये (१०८) एक सौ आठ उपनिषदें सुनानी चाहिए, जो इन्हें सुनें या पढ़ें वह मुझे प्राप्तकर ही लेता है।।४६॥

इसके लिए एक ऋचा भी कही गयी है- “एकबार ब्रह्मविद्या ने एक ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) के पास जाकर कहा- आप मेरी रक्षा कीजिए। मैं आपकी निधि हूँ। किसी भी द्वेषी कुटिल और दुष्ट को (आप) मुझे (ब्रह्मविद्या को) कभी मत दीजिएगा, तभी मैं वीर्यवती (शक्तिशाली) हो सकूँगी। जिसने इस विद्या को (पहले) सुन रखा हो, जो सावधान होकर मन लगाकर सीखना चाहता हो, बुद्धिमान हो, ब्रह्मचारी हो, अपने आप सीखने के लिए आया हो, उसकी भी भली प्रकार परीक्षा करके यह वैष्णवी विद्या (आत्मविद्या) देनी चाहिए।

फिर हनुमानजी ने रामचन्द्रजी से पूछा- भगवन्! ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद के अलग-अलग कौन से उपनिषद् हैं और उनके

शान्तिमन्त्र कौन-कौन से हैं। यह मुझे कृपा करके बताइए।।५०॥

श्रीरामचन्द्रजी ने कहा- “ऐतरेय, कौषीतकि ब्राह्मण, नादबिन्दु, आत्मप्रबोध, निर्वाण, मुद्गल, अक्षमालिका, त्रिपुरा, सौभाग्यलक्ष्मी और बह्वच- ये दस उपनिषद् ऋग्वेदीय हैं और इनका शान्ति-मंत्र है- ‘वाङ् मे मनसि।’ इत्यादि।।५१॥

ईशावास्य, बृहदारण्यक, जाबाल, हंस, परमहंस, सुबाल, मन्त्रिका, निरालम्ब, त्रिशिखब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण, अद्वयतारक, पैङ्गल, भिक्षुक, तुरीयातीत, अध्यात्म, तारसार, याज्ञवल्क्य, शाट्यायनी और मुक्तिका- ये शुक्लयजुर्वेद के उन्नीस उपनिषद् हैं। इनका शान्ति मन्त्र है- ‘पूर्णमदः पूर्णमिदम्’ इत्यादि।।५२॥

कठवल्ली, तैत्तिरीय, बहन, कैवल्य, श्वेताश्वतर, गर्भ, नारायण, अमृतविन्दु, अमृतनाद, कालाग्निरुद्र, क्षुरिका, सर्वसार, शुकुरहस्य, तेजोबिन्दु ध्यानबिन्दु, ब्रह्मविद्या, योगतत्त्व, दक्षिणामूर्ति स्कन्द, शारीरक, योगशिखा, एकाक्षर, अक्षि, अवधूत, कठरुद्र, रुद्रहृदय, योगकुण्डली, पञ्चब्रह्म, प्राणग्नियोत्र, वराह, कलिसन्तरण और सरस्वतीरहस्य ये कृष्णयजुर्वेद के बत्तीस उपनिषद् हैं; इनका शान्तिमन्त्र है- ‘सह नाववतु सह नौ भुनक्तु’ इत्यादि।।५३॥

केन, छान्दोग्य, आरुणिक, मैत्रायणी, मैत्रेयी, वज्रसूचिका, योगचूडामणि, वासुदेव, महत्, संन्यास, अव्यक्तकुण्डिका, सावित्री, रुद्राक्ष, जाबाल, जाबालदर्शन और जाबालि- सामवेद के सोलह उपनिषद् हैं इनका शान्तिमन्त्र है- ‘आप्यायन्तु ममाङ्गानि०’ इत्यादि।।५४॥

प्रश्न, मुण्डक, माण्डक्य, अथर्वशिरस, अथर्वशिखा, बृहज्जाबाल, नृसिंहतापनीय,

नारदपरिव्राजक, सीता, शरभ, त्रिपाद्विभूतिमहानारायण, रामरहस्य, रामतापनीय, शाण्डिल्य, परमहंस परिव्राजक, अन्नपूर्णा, सूर्य, आत्मा, पाशुपत परब्रह्म, त्रिपुरातापनीय, देवी, भावना भस्मजाबाल, गणपति, महावाक्य, गोपालतापनीय, कृष्ण, हयग्रीव, दत्तात्रेय और गरुड़- ये अथर्ववेद के इकतीस उपनिषद् हैं, इनका शान्तिमन्त्र है, 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयामः इत्यादि॥५५॥

जो मुक्ति चाहनेवाले हैं, क्या वस्तु सदा रहनेवाली है क्या सदा नहीं रहनेवाली है, इनके ज्ञान वाले हैं। इस लोक और परलोक के सारे भोगों से वैराग्य शम, दम आदि छः सम्पत्ति और धर्म अर्थ काम मोक्ष के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं। वे श्रद्धा से भरे हुए लोग किसी अच्छे कुल में उत्पन्न होकर वेद का पाठ करने वाले, शास्त्र पढ़नेवाले, सीधे सच्चे हृदय वाले(मुनि) सब प्राणियों की भलाई करते रहनेवाले और सब

पर दया करने वाले, गुरु के पास भेंट लेकर जाते हैं और उनसे एक सौ आठ उपनिषद् विधिपूर्वक पढ़कर बराबर उनका श्रवण, मनन, निदिध्यासन के साथ अभ्यास करते हैं।

फिर जब उनके प्रारब्ध कर्मों का नाश हो जाता है? तब उनके स्थूल सूक्ष्म तथा कारण शरीर नष्ट हो जाते हैं और वे सारी उपाधियों से छूटकर ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। यही विदेहमुक्ति कहलाती है और इसीको कैवल्य-मुक्ति भी कहते हैं, इसीलिए ब्रह्मलोक में रहनेवाले मुक्त प्राणी भी ब्रह्मा के मुख से वेदान्त का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके उन्हींके साथ कैवल्य मुक्ति पा लेते हैं। इसीलिए कहा गया है कि केवल ज्ञान के द्वारा ही कैवल्य मुक्ति मिलती है। कर्मयोग, सांख्ययोग और उपासना के द्वारा नहीं, यही उपनिषद् है।

प्रथम अध्याय पूर्ण



सन्त चरणदास का जन्म अलवर (मेवात) से १० कि० मी० पर डहरा नामक गाँव में सं. १७६० भाद्र शुक्ल तृतीया मंगलवार तदनुसार दिनांक १४.०६.१७०३ ई० को हुआ था। इनकी माता का नाम कुंजो देवी तथा पिता का नाम मुरलीधर था। नीच दूसर कुल में जन्मे चरणदास अपने काल के प्रसिद्ध सन्त हुए।

चारि वरण सों हरिजन ऊँचे॥

भये पबित्तर हरि के सुमिरे तनके उज्ज्वल मनके सूचे॥
जो न पतीजै साखि बताऊँ शबरी के झूठे फल खाये।
बहुत ऋषीश्वर ह्वाँई रहते तिनके घर रघुपति नहिं आये॥
भीलनी पाँव दियो सरिता में शुद्ध भयो जल सब कोई जाने।
मन्द हुतो सो निर्मल हूवो अभिमानी नर भये खिसाने॥
ब्राह्मण क्षत्री भूप हुते बहु बाजो शङ्ख श्वपच जब आयो।
बालमीकि यज्ञ पूरण कीन्हो जयजयकार भयो यश गायो॥
जाति बरण कुल सोई नीको जाके होय भक्ति परकास।
गुरु शुकदेव कहत हैं तोको हरिजन सेव चरण ही दास॥

b b

शांति और आनन्द

○ श्रीकान्त व्यास

b b

सामान्य आदमी भौतिक वस्तुओं के उपयोग में आनन्द का अनुभव करता है जबकि एक साधक, ऋषि, महर्षि, योगी, सन्त अध्यात्म मार्ग में ही आनन्द का अनुभव करता है। आनन्द तो दोनों प्राप्त करता है मगर उनके आनन्द और इने आनन्द में फर्क है। पहले का आनन्द जहाँ क्षणिक, अल्पकालिक, सीमित, क्षय

होनेवाला है, वहीं दूसरे का आनन्द शाश्वत है, अक्षय है। जो साधक परमसत्ता तक पहुँच जाता है वह परमानन्द को पाता है। मगर यहाँ आदमी संभोग में ही परमानन्द पाने का भ्रम पालता है। संभोग से मनुष्य क्षणिक आनन्द पा सकता है, परमानन्द नहीं। परमानन्द का मतलब है जहाँ परम शांति हो, कोलाहल के लिए कहीं जगह न हो, बेचैनी जैसी कोई चीज न हो, जहाँ अतीत और भविष्य न हो। मेरा मानना है कि जहाँ शांति बसती है आनन्द वहीं बरसता है। शांति को पाना तो यों ही कठिन है, परम शांति को पाना तो और भी कठिन। परम शांति को पाना कठिन अवश्य है अगर असंभव नहीं। परम शांति को पाने का एक ही मार्ग है और वह है अध्यात्म मार्ग। इसके अलावा जितने भी मार्ग हैं वे परम

चार्वाक को छोड़कर सभी दार्शनिकों ने संसार को दुःखमय माना है और शाश्वत आनन्द एवं चिरन्तन शान्ति के लिए ब्रह्मसायुज्य की अपेक्षा बतलायी है। किन्तु इस संसार में भी हमारा मन जितना अशान्त होगा, उतना दुःखी होगा। शान्ति और आनन्द के बीच का यह कार्यकारणभाव सम्बन्ध इतना घनिष्ठ है कि यह दोनों के बीच तादात्म्य सम्बन्ध को निरूपित करता है।

शांति के मार्ग नहीं है। जीवन में हर आदमी कभी-न-कभी शांति को पा ही जाता है, भले ही वह क्षणिक ही क्यों न हो। करोड़ों में कोई एक होता है जिसे परम शांति मिल पाती है। परम शांति बहुत ऊँची चीज है। परम शांति किसे मिली परम शांति मिली आदि शंकराचार्य को, परम शांति मिली दादू, रैदास, मीरा को, परम शांति मिली ईशु, मुहम्मद साहब, बुद्ध, महावीर को, परम शांति मिली महर्षि अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द को परम शान्ति मिली। सूर, कबीर, तुलसी को। यही एक परमशांति है जिसे सभी को नसीब नहीं होती। इसे धन, बल, बुद्धि, वैभव से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यह साधना की चीज है। साधन मार्ग के अलावा और कोई मार्ग नहीं जिसके सहारे हम परम शांति को पा सकते हैं। आखिर मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य क्या है? मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य है परम शांति को पाना। मगर इस लक्ष्य की प्राप्ति में भौतिक वस्तुएँ मृग मरीचिका बनकर मनुष्य को भटका देती हैं और मनुष्य इस परम शांति रूपी लक्ष्य तक पहुँच नहीं पाता। जो इस लक्ष्य तक पहुँच गया उसे जीवन जीने की कला आ गयी।

एक प्रेरणादायक कथा है कि एक महात्मा अपने आश्रम में बैठा हुआ था। उसी वक्त आश्रम में एक युवक आया और महात्मा से बोला- महात्मन! मैं अपने जीवन को सुखमय, आनन्दमय और शांतिमय बनाना चाहता हूँ।

महात्मा ने पहले तो युवक को बड़े गौर से देखा, फिर युवक को अपने साथ चलने को कहा। महात्मा आगे-आगे और युवक पीछे-पीछे चलने लगा। कुछ देर के पश्चात दोनों एक कुएँ के पास पहुँचे। दोनों ने कुएँ के पास देखा कि कई पनिहारिन अपने सिर पर घड़ा रखकर चल रही हैं और आपस में बातचीत भी कर रही हैं। महात्मा ने युवक से प्रश्न किया- बेटे, ये पनिहारिनें आपस में बातें इतनी मस्त होकर कर रही हैं फिर भी इनके सिर पर से घड़ा क्यों नहीं गिर रहा है? युवक ने जवाब दिया- महात्मन्! ये पनिहारिनें आपस में बातें तो तन्मय होकर कर रही हैं मगर इनलोगों का ध्यान अपने-अपने घड़े पर है। महात्मा ने युवक को बड़े प्यार से समझाया-बेटे, यही तो है जीवन जीने की कला। लौकिक जीवन में कर्म करते हुए जिसने अपना ध्यान लक्ष्य पर टिका रखा उसे सफलता अवश्य मिली है।

लौकिक जीवन में कर्म करते हुए जो ध्यान लक्ष्य पर नहीं टिका पाता, उसे असफलता ही हाथ लगती है। जीवन तो एक श्वान भी जीता है और मनुष्य भी जीता है मगर उनके जीवन जीने में फर्क है। मैं यह नहीं कहता कि सभी मनुष्य कुत्ते से बेहतर जीवन जीते हैं। हमारे समाज में ऐसे भी लोग हैं जो कुत्ते से भी बदतर जीवन जी रहे हैं। अगर लोग कुत्ते से बेहतर कर्म करते तो कुत्ते को पालतू पशु बनाया ही क्यों जाता? कई मामले में कुत्ता हमसे बेहतर है। आप आज्ञाकारी नहीं भी हो सकते मगर कुत्ता आज्ञाकारी होगा ही। आपके आज्ञाकारी होने में शक है मगर कुत्ते के आज्ञाकारी होने में कोई शक नहीं। आप

भक्षक बन भी सकते हैं मगर कुत्ता रक्षक ही होगा। आप खुद समझ सकते हैं कि आप कुत्ते से कितने श्रेष्ठ हैं। आप मनुष्य होने का अहम मत पालना। केवल मनुष्य तन पाकर आप बहुत बड़े तीर नहीं मार दिये। शाबासी आपको उस दिन मिलेगी जब आप परम सत्ता तक पहुँच जाएँगे।

बिना अध्यात्म मार्ग पर गमन किये मनुष्य का आत्म कल्याण संभव नहीं। अध्यात्म मार्ग ही असली शांति का मार्ग है। शांति और मोक्ष को एक दूसरे का पर्याय मानने में हमें तनिक भी संकोच नहीं करना चाहिए। अध्यात्म मार्ग बहुत सूक्ष्म मार्ग है। अध्यात्म देखने की चीज नहीं, अनुभव करने की चीज है। लोगों का आज अध्यात्म मार्ग से विमुख होने के कारण ही समाज में अशांति, हिंसा, पाशविक प्रवृत्ति चल रही है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, इन पाँचों को पार करने के बाद अध्यात्म मार्ग आरंभ होता है। आप समझ सकते हैं कि अध्यात्म मार्ग पर गमन करना कितना कठिन कार्य है।

जब से अध्यात्म और मनुष्य के बीच दूरी बढ़ी है तभी से समाज में अनाचार, व्यभिचार का शासन स्थापित हुआ है। लियो टॉल्स्टॉय ने धर्महीन होते लोगों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है- 'हमारी दुनिया के लोगों ने धार्मिक भावना के अभाव में अपने जीवन को अत्यन्त क्रूर, पाशविक, अनैतिक और दुराचारपूर्ण बना डाला है। साथ ही उन्होंने अपने पतित जीवन की बुराइयों को छिपाने के लिए ऐसे जटिल, सूक्ष्म एवं निरर्थक तर्क उपस्थित किया है जो इस हद तक गूढ़ और भ्रमजनक है कि बहुसंख्यक मनुष्य समाज न भले और न बुरे का निर्णय कर सकता है, न सच और झूठ की पहचान ही कर सकता है।'

मेरा मानना है कि धर्म रहित कर्म से परहित भाव नहीं आ सकता। कर्म में अगर धार्मिक भाव समाहित हो तो वह कर्म सद्कर्म हो जाता है। सत्कर्म करने से ही मनुष्य को पुण्य

की प्राप्ति होती है। आप सद्कर्म को कल्याणकारी कर्म भी कह सकते हैं क्योंकि सद्कर्म सभी अकल्याणकारी नहीं होता। जिस कर्म से समाज या व्यक्ति का अहित हो, समझो वह कर्म दुष्कर्म है। मन, वचन और शरीर से किसी को पीड़ा देना दुष्कर्म है।

भारतीय संस्कृति का परहित भाव देखिए यहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की खुलकर बाते होती है। हमारी संस्कृति सम्पूर्ण जगत को एक परिवार मानता है। कितनी महान है हमारी संस्कृति। भारत को जगत गुरु की संज्ञा यों ही नहीं मिली थी। हमारा दर्शन बेमिसाल है, अनूठा है, दिव्य है। अध्यात्म के बिना मानव जीवन मूल्यहीन है। बिना धर्म का दामन थामे मनुष्य का जीना बेकार है। धर्म तो धारण करने की चीज है। धर्म-अध्यात्म से विमुख रहकर मानव का कल्याण नहीं हो सकता। जब सन्तों का संग मिलता है तो खूंखार डाकू में भी साधुता घर कर जाती है। रत्नाकर डाकू इसका जीता-जागता उदाहरण है। सत्संग प्राप्त कर रत्नाकर डाकू वाल्मीकि बन जाता है। महान ऋषि के पद को सुशोभित करता है। अपना सम्पूर्ण जीवन प्रभु राम को समर्पित कर देता है। प्रभु राम के माहात्म्य पर विश्व प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामायण' की रचना कर डालता है। यह है सत्संग की महिमा। सत्संग तो पारस पत्थर के समान है। जिस प्रकार पारस पत्थर के सम्पर्क में आकर लोहा कंचन बन जाता है ठीक उसी प्रकार सत्संग के प्रभाव में आकर मूढ़ ज्ञानी बन जाता है। वेलगाम मन अनुशासित हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, वैमन्यस्य आदि विकारों का खात्मा हो जाता है।

आज मानव जाति का मन अशांत है। इसी अशान्त मन को शान्त करने के लिए वह अध्यात्म की ओर उन्मुख हो रही है। भौतिक सम्पदा से समृद्ध मुल्क अमेरिका भी आज अशांति

के दौर से गुजर रहा है। समय करवट बदल रहा है। वहाँ भी अध्यात्म की ओर हाल के वर्षों में बेहद झुकाव बढ़ा है। आप सोच रहे होंगे कि ऐसा क्यों हो रहा है? बता दूँ कि सांसारिक भोग से मनुष्य कभी सन्तुष्ट नहीं हुआ था, न हो रहा है और न भविष्य में कभी हो पायेगा। सांसारिक लोग जो 'संभोग' को ही आनन्द का चरम बिन्दु मानते हैं वे गलतफहमी में जी रहे हैं। एक साधक ही आनन्द के चरम बिन्दु को महसूस कर सकता है। पश्चिमी देशों की आज स्थिति यह है कि लोग शांति मिल जाये पर उन्हें शांति नहीं मिलती। इन देशों में बेचैन आत्माओं की तादाद बहुतायत रूप में दिखने को मिलती है। शांति के लिए लोग पैसे को पानी की तरह बहाने को तैयार हैं फिर भी उन्हें शांति हाथ नहीं लगती। इसी अशांति के कारण पश्चिम के लोग भारतीय धर्म के कई महत्वपूर्ण सूत्र को बेहिचक अपना रहे हैं। ध्यान और योग को वे लोग बड़े चाव से करने लगे हैं। यही कारण है कि हिन्दुस्तान के हिन्दू धर्मों की शाखाएँ ईसाई मुल्क प्रधान अमेरिका जैसे देश में भी पल्लवित, पुष्पित और फलित हो रही है। वहाँ भारतीय सन्तों का बड़ा समादर है।

संसार के लोग जैसे-जैसे आर्थिक रूप से सुदृढ़ होते जा रहे हैं वैसे-वैसे उसकी पीड़ाएँ भी बढ़ती जा रही हैं। इसका जीता जागता उदाहरण है मंदिरों, मस्जिदों, गिरिजाघरों, गुरुद्वारों और धार्मिक समारोहों में बढ़ती भीड़। अधिक से अधिक भौतिक वस्तुओं का उपभोग कर भी लोग कष्टों से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं। जो जितने धनी हैं वे उतने ही लोभी और दुःखी भी हैं। मनुष्य को यही कष्ट भगवान् के शरणागत होने को मजबूर करता है। मनुष्य को अगर अपने जीवन में कष्ट नहीं आता तो वह कभी भी भगवान् का ध्यान, भजन या स्तुति करने ठकी जहमत नहीं उठाता। मैं तो यही कहूँगा कि जब तक मनुष्य की जीवन

में कष्ट है तब तक वह नास्तिक नहीं हो सकता। परमात्मा की सत्ता के वही विरोधी हो सकता है जो अपनी माँ को माँ और अपने पिता को पिता मानने को राजी नहीं। ऊपर से भले ही कोई मनुष्य नास्तिक होने का ढोंग रचे मगर भीतर से उसे आस्तिकता धक्का मारती रहती है। मनुष्य को यदि पीड़ा न होती तो वह ईश्वर को भी नहीं मानता। संसार में कहीं भी मंदिर, मस्जिद, गिरिजाघर या गुरुद्वारा नाम की चीज नजर नहीं आती। न कहीं मंदिर में घंटी बजती और न कोई मस्जिद में नमाज पढ़ता।

मनुष्य इस मृत्युलोक में आकर नाना प्रकार की भौतिक वस्तुओं का संग्रह करता है ताकि उसका जीवन सुखमय व्यतीत हो सके परन्तु इस क्रम में वह भूल जाता है कि एक क्षण में हमें मरना है। मानव अगर अपने जीवन में हीरा-जवाहरात का अम्बार भी लगा ले तो क्या उसे शांति मिल सकती है? नहीं, उसके अन्दर भी अशांति व्याप्त रहेगी और यही अशांति उसके दुःख का मूल कारण है। मनुष्य अपनी सम्पत्ति को जिस तादाद में वृद्धि करना चाहता है वह उसे कर नहीं पाता, क्योंकि मानव की इच्छाएँ अनन्त हैं। भला इस अनन्तता में वृद्धि कहाँ। धन संग्रह की तृष्णा मनुष्य को जलाती रहती है। तृष्णा और शांति में सदा बैर रहा है। अगर आप तृष्णा से प्रेम करते हैं तो शांति हाथ नहीं लग सकती। मानव जाति की सबसे बड़ी गलती यह है कि वह इस तृष्णा के प्रांगण में खेल रही है और शांति की आशा संजोये है। मोक्ष को पाना चाहता है। मनुष्य की यही बुनियादी भूल है। आपको सैकड़ों संन्यासी

देखने को मिलेंगे। आप जरा उनसे पूछें कि क्या आपकी तृष्णा मिट गयी? वो कहेंगे- नहीं, मेरी तृष्णा नहीं मिटी है। धर्मप्रेमी सज्जनों! जंगल में भटकने और कुटिया में बास करने मात्र से अगर मोक्ष की प्राप्ति हुई होती तो सारे के सारे जंगलियों को मोक्ष की प्राप्ति कब की हो गयी होती। मोक्ष प्राप्ति के लिए न जंगल में भटकने की आवश्यकता है और न शरीर को कष्ट देने की जरूरत है। संसार में रहकर भी मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते इन्द्रियाँ वश में हों।

संसार में रहकर मनुष्य भौतिक सम्पदा का चाहे कितना भी क्यों न संग्रह- उपभोग कर ले पर वास्तविक आनन्द और सन्तोष की प्राप्ति नहीं हो सकती। अगर भौतिक सम्पदा से आनन्द और सन्तोष की प्राप्ति हो गयी होती तो राजकुमार सिद्धार्थ अर्द्धरात्रि में महल, अर्द्धांगिनी यशोधरा और नवजात पुत्र राहुल को छोड़कर शान्ति और ईश्वर प्राप्ति के लिए जंगल में नहीं खाक छानते। राजकुमार को क्या दिक्कत थी। राजा का पुत्र था। सारी सुविधाएँ थीं। जो इच्छा होती सामने हाजिर होता। भौतिक वस्तुओं के उपभोग की पूरी आजादी थी। फिर भी सिद्धार्थ का संसार से मन उचट गया। इससे साफ जाहिर होता है कि वास्तविक आनन्द की प्राप्ति ईश्वर की खोज करने में है, ईश्वर की आराधना में है न कि सांसारिक भोग में।

सम्पर्क:- साहित्यकार एवं पत्रकार

पोस्ट बॉक्स नं.-१६ (सोलह)

जी०पी०ओ०, पटना-१



मंगलपाठ

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
 देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
 नमोऽस्तु रुद्रेन्द्र यमानिलेभ्यो
 नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः । ।

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीय गुणात्मने ।
 चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् । ।

यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदिवनमस्कृते ।
 वृत्रनाशे समभवत् तत् ते भवतु मङ्गलम् । ।

यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत् पुरा ।
 अमृतं प्रार्थयानस्य तत् ते भवतु मङ्गलम् । ।

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
 अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत् ते भवतु मङ्गलम् । ।

त्रिविक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः ।
 यदासीन्मङ्गलं राम तत् ते भवतु मङ्गलम् । ।

ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
 मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु शुभमङ्गलम् । ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
 सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् । ।



प्रपत्र नियम ८ के अनुसार

धर्मायण

१. प्रकाशन का स्थान : पटना
२. आवर्तिता : त्रैमासिक
३. प्रकाशक एवं मुद्रक
 का नाम : प्रो० काशीनाथ मिश्र
 क्या भारत के नागरिक हैं? : हाँ
 (यदि विदेशी हैं तो मूल देश)
 पता : महावीर मन्दिर,
 पटना जंक्शन, पटना-१
४. सम्पादकमण्डल : प्रो० काशीनाथ मिश्र
 महन्त उद्धवदासजी
 डा० श्रीरंजन सूरिदेव
 आचार्य किशोर कुणाल
- प्रधान सम्पादक : भवनाथ झा
 क्या भारत के नागरिक हैं? : हाँ
 (यदि विदेशी हैं तो मूल देश)
 पता : महावीर मन्दिर, पटना
 जंक्शन, पटना-१
- क्या भारत के नागरिक हैं? : हाँ
 (यदि विदेशी हैं तो मूल देश)
 पता : महावीर मन्दिर, पटना
 जंक्शन, पटना-१
५. स्वत्वाधिकार : श्री महावीर स्थान न्यास
 समिति, महावीर मन्दिर,
 पटना जंक्शन, पटना-१

मैं प्रो० काशीनाथ मिश्र एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी
 अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए
 विवरण सत्य हैं।

ह० प्रो० काशीनाथ मिश्र

वेदवाणी

ब्रह्मचारी-माहात्म्य अथर्व० (११।३।१)

[ब्रह्मचारी अपने श्रेष्ठ आचरण से ब्रह्म को पा लेता है; धरती और आकाश को अपने में समेट लेता है। वह अपने तप के प्रभाव से उत्तम आचरण करता हुआ सबको पालता पोसता है। ऐसा ब्रह्मचारी वही है, जो ज्ञान और आचरण में श्रेष्ठ हो। श्रेष्ठ आचरण का माहात्म्य इस सूक्त में गाया गया है।]

ब्रह्मचारीष्णांश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति॥१॥

ब्रह्मचारी स्वयं आकाश और पृथ्वी पर चलता है। सभी देवता उनके मित्र होते हैं। वह पृथ्वी और आकाश का पोषण करता है। अपनी तपस्या से गुरु को भी भर देता है।

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः
सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति॥२॥

सभी देवता और पितर भी ब्रह्मचारी की रक्षा करने अलग अलग पधारते हैं। गन्धर्व गण भी इनके पीछे आते हैं। तैंतीस, तीन सौ तीन और छह हजार देवताओं का भी वह पोषण करता है।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः॥३॥

आचार्य उसे अपने समीप लाकर गर्भ में धारण करता है और तीन रात तक कोख में पालता पोसता है। जब वह जन्म लेता है तो उसे देखने देवता पधारते हैं।

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति॥४॥

यह पृथ्वी उसकी पहली समिधा है, दूसरी समिधा आकाश है और अन्तरिक्ष भी समिधा है। इससे वह जगत् को तृप्त करता है। ब्रह्मचारी समिधा, मेखल श्रम और तप से सभी लोकों का पालन पोषण करता है।

पूर्वो जातो ब्रह्मचारी घर्म वसानस्तपसोदतिष्ठत्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अभृतन साकम्॥५॥

पहले ब्रह्मचारी ब्रह्म से जन्मा। तप के कारण ऊष्मा धारण करता हुआ उपर उठा। अपने अमरत्व के साथ सभी देव उस ब्रह्म से जन्मे श्रेष्ठ ब्रह्मचारी के साथ हो गये।

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्तसंगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥६॥

होम करने से दहकता हुआ, कृष्णाजिन पहन कर बड़ी-बड़ी दाढ़ियाँ बढ़ाये हुए दीक्षित होकर आ रहा है। वह पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र तक तुरत सभी लोकों को अपनी मुट्टी में कर लेता है।

क्रमशः

महावीर आरोग्य संस्थान के बढ़ते कदम

स्थापना :- ०७.११.१९८८

चिरैयाटाड़ पुल के पास

कंकड़बाग, पटना

दूरभाष सं.- ०६१२-२३५२२२०, २३५६२६४

(महावीर मन्दिर द्वारा स्थपित एवं संचालित)

उपलब्ध सेवाएं

महावीर नेत्रालय- आँख/चक्षु/नेत्र सम्बन्धी सभी बिमारियों की आधुनिक उपकरणों द्वारा जाँच एवं सभी शल्य क्रिया की सुविधा उपलब्ध। (PHACO) फेको द्वारा भी ऑपरेशन की सुविधा उपलब्ध)

कान, नाक, गला विभाग- अत्याधुनिक जर्मन माइक्रोस्कोप से विशेषज्ञों द्वारा सभी प्रकार की शल्यक्रिया एवं परामर्श, ऑडियोमेट्री जाँच की सुविधा।

स्त्री रोग विभाग- २४ घंटे प्रसव की सुविधा उपलब्ध, विशिष्ट जाँच एवं बाँझपन के लिए उपचार की सुविधा, हर प्रकार की शल्यक्रिया।

जेनरल सर्जरी- हर प्रकार की शल्य-क्रिया की सुविधा रियायती दर पर उपलब्ध।

अन्य सुविधाएँ :-

विशिष्ट चिकित्सा- मेडिसिन, हड्डी रोग, दन्त विभाग, चर्म एवं यौन रोग, मनोरोग, शिशु रोग। एक्स-रे, अल्ट्रासाउंड, पैथोलोजी, फिजियोथिरेपी सभी जाँच रियायती दर पर एक ही जगह उपलब्ध।

विशेष पैकेज-

सम्पूर्ण स्वास्थ्य जाँच एवं डायबीटीक पैकेज शुल्क- ६ महीना- ८५०/- १ वर्ष- १६००/-
पैकेज के अन्तर्गत जाँच एवं सुविधाएँ निःशुल्क।

इनडोर सुविधाएँ- २४ घंटे उपलब्ध। परामर्श हेतु चिकित्सक २४ घंटे उपलब्ध।

भेषज (दवा)- दवाएँ ५ प्रतिशत बाजार दर से कम मूल्य पर रसीद के साथ।

रजिस्ट्रेशन शुल्क- १०/-

प्रतिवर्ष नया रजिस्ट्रेशन- ६०, ००० (साठ हजार)

विशेष जानकारी के लिए निदेशक/काउंटर से संपर्क करें।

महावीर मन्दिर प्रकाशन का नवीन पुष्प

वाल्मीकि-रामायण

केवल हिन्दी अनुवाद

अनुवादक- आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

मूल्य १९० रु० मात्र

महावीर मन्दिर प्रकाशन ने आचार्य सीताराम चतुर्वेदी द्वारा अनूदित वाल्मीकि-रामायण का प्रकाशन किया है। इसमें सम्पूर्ण रामायण के श्लोकों की संख्या का संकेत करते हुए केवल हिन्दी अनुवाद दिया गया है। घटना एवं वर्णन को प्रभावकारी रूप देने के लिए अनुच्छेद परिवर्तन का विन्यास भी किया गया है।

आचार्यजी की हिन्दी भाषा विलक्षण है। वे नागरी प्रचारणी सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन से जुड़े रहे। उन दिनों हिन्दुस्तानी, और तत्समनिष्ठ हिन्दी को अपनाये जाने का विवाद चला था। एक खेमा हिन्दुस्तानी का समर्थक था; दूसरा खेमा तत्समनिष्ठ हिन्दी का पक्षधर था। इस स्थिति में उन्होंने उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी का विरोध किया। किन्तु वे तत्सम-निष्ठ हिन्दी के भी पक्षधर नहीं थे। वे हमेशा शुद्ध हिन्दी के पक्ष में रहे। उनकी मान्यता रही कि हिन्दी के तद्भव और देशज शब्द इसकी अपनी सम्पदा हैं। देशज शब्दों से देश की मिट्टी की जो सोंध आती है; वह उसकी अपनी सम्पत्ति है और उस सम्पत्ति का जबतक प्रयोग नहीं होगा, हिन्दी समृद्ध नहीं होगी। अपनी इस मान्यता का व्यवहार उन्होंने सर्वत्र किया है। पूरी प्रामाणिकता के साथ मुझे यह उद्घोष करने में किंचित् भी संकोच नहीं है कि ठेठ हिन्दी का ठाठ गढ़नेवाला ऐसा शिल्पी न अबतक कोई हुआ और न भविष्य में होने की सम्भावना है। यदि विश्वास न हो, तो इस अनुवाद के अतिरिक्त उनकी दो रचनाएँ 'जै बजरंगबली' और 'जै जै सियाराम' पढ़ लें। ये दोनों कृतियाँ 'महावीर मन्दिर प्रकाशन' से उनके जीवन-काल में ही छप चुकी हैं।

महावीर मन्दिर में रविदास-जयन्ती का कार्यक्रम

दि० ०२ फरवरी २००७ को महावीर मन्दिर द्वारा संचालित 'सन्त रविदास सेवा समिति, पटना द्वारा डा० डोमन दास के संचालन में एक शोभा-यात्रा भी निकाली गयी। मन्दिर में इस शोभा-यात्रा की समाप्ति के बाद अन्य वर्षों की भाँति मन्दिर परिसर में सन्ध्या ५:३० बजे से सन्त रविदास की जयन्ती का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। इस कार्यक्रम में बिहार के माननीय मुख्यमन्त्रीजी, बिहार के पूर्व मुख्यमन्त्री श्री रामसुन्दर दास तथा बिहार के राजस्व एवं भूमि सुधार मन्त्री माननीय रामनाथ ठाकुर ने सन्त रविदास के चित्र पर माल्यार्पण किया। श्रीमहावीर स्थान न्यास समिति के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने सन्त रविदास के जीवन पर प्रकाश डालते हुए सन्त रविदास की जयन्ती के अवसर पर सामाजिक समरसता का पाठ सीखने के संकल्प पर जोड़ दिया।